ज्ञायक भाव

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनि

ज्ञायक भाव

रचयिता

दिगम्बराचार्य विशुद्ध सागर मुनि

प्रस्तुत कृति : ज्ञायक भाव

कृतिकार : आचार्य विशुद्धसागर मुनि

संकलन : श्रमण सुव्रतसागर मुनि

संपादन : डॉ. प्रो. भागचंद जैन 'भास्कर'

प्रस्तुति सहयोग : मुनि समत्व सागर

संस्करण : प्रथम, 2017/1100 प्रतियाँ

पुण्यार्जक : श्रीमती विमलादेवी पाटोदी, इंदौर
पाटोदी परिवार, इंदौर
मो.: 9229439581

मूल्य : रु. 120/- (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्राप्तिस्थान : श्रावक संस्कार साहित्य केन्द्र
श्री नन्दीश्वर दीप जिनालय
जैन नगर, लालघाटी, भोपाल (म.प्र.)
फोनः 9425374897, 8878932223

श्रमण संस्कृति सेवा संघ, इंदौर (म.प्र.)
फोनः 9425321151, 9826210189

मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र,
गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
संपादकीय	21
मंगलाचरण	25
जिन	26
सम्यक् बोध	27
जीवत्व	28
स्वपर घातक	29
महादुःख	30
उन्मत्त हाथी	31
भव भ्रमण	32
चैतन्य धातु	33
आत्म द्रव्य	34
ध्रुव-अध्रुव	35
भूतार्थ मुनि	36
अर्हत-भक्ति	37
एकत्व स्वभाव	38
चारित्र	39
परम सुख	40
पुण्य	41
सँभालो	42
स्वोपादान	43
श्रमण	44
स्वभाव	45

उपादान	46
संयोग-वियोग	47
पहिचान	48
महादुर्लभ	49
आत्मधर्म	50
कलियुग	51
महागर्त	52
परिवर्तन	53
अध्रुव	54
अकेला	55
समता	56
शुद्ध-बुद्ध	57
तत्त्व बोध	58
समता	59
रक्षा कवच	60
विस्मृति द्रुतं	61
साधु स्वभाव	62
गुणी वन्दनीय	63
वस्तु स्वभाव	64
बंध भाव	65
सम्यक् दर्शन	66
वस्तु स्वरुप	67
देशना	68
सँभाल	69
निजधर्म	70

निरुपराग	71
तत्त्व विचार	72
द्रव्य–पर्याय	73
वस्तु–व्यवस्था	74
मुक्ति नहीं	75
नारी पर्याय	76
पुरुषार्थ	77
स्वात्म धर्म	78
साम्य भाव	79
वस्तु व्यवस्था	80
पहिचान	81
अतत्–तत्	82
महाधैर्यवान	83
भावलिङ्गी श्रमण	84
अरिहंत देव	85
तटस्थ–भाव	86
ज्ञेय–ज्ञाता–ज्ञान	87
संसार	88
पूजा	89
आत्मपूज्यता	90
शिवगामी	91
परम गुरु	92
पुरुषार्थ	93
स्वाश्रय	94
शरण	95

महामंत्र	96
विशुद्धि	97
ज्ञायक स्वभावी	98
आत्मशोध	99
सत्	100
कर्ता	101
अवाच्य	102
सद्बोध	103
मति कर सुमति	104
वस्तु स्वभाव	105
आत्म गुरु	106
सामान्य-विशेष	107
आत्म-स्वभाव	108
शील से स्वर्ग	109
आत्म-विशुद्धि	110
ज्ञानी	111
परम कला	112
माध्यस्थ	113
वस्तु स्वतंत्रता	114
पर चिंता धमाधमा	115
निद्रा	116
मूढ़ता	117
बन्ध प्रक्रिया	118
व्रत-महिमा	119
धृति-महिमा	120

अवलोकन	121
कारणकार्य भाव	122
द्रव्य स्वभाव	123
भवितव्यता	124
परम शरण	125
परमाणु	126
सम्यक्त्व गुण	127
वस्तु धर्म	128
पुण्योदय	129
चारित्र	130
सुख-दुःख	131
कर्म-कर्म फल चेतना	132
ज्ञान-यज्ञ	133
भेद विज्ञान	134
वर्तमान ही भूत	135
भगवान्	136
परमात्म-प्रभु	137
सहज भाव	138
विपाकोदय	139
विश्व विजेता	140
अवज्ञा	141
आकिंचन्य	142
पवित्र चारित्र	143
सत्ता	144
वस्तु निर्णय	145

राग संबंध	146
सद् दृष्टि	147
अहिंसा	148
मूर्च्छा	149
नीति	150
निज प्रवेश	151
दैव और पुरुषार्थ	152
भव–भ्रमण	153
परिणाम–परिणामी	154
पुरुषार्थ	155
तपोधन	156
पुण्य–महिमा	157
आनंद	158
मुक्ति बधु	159
परम शरण	160
पुण्य–पाप	161
स्वात्म हित	162
सच्चा मित्र	163
वस्तु अनेकान्तभूत	164
अलिङ्ग भाव	165
सम्यक् उपदेश	166
परम ब्रह्म	167
परम स्वभाव	168
दुःख का मूल	169
सरल–कठिन	170

प्रमाद-प्रमदा 171
आत्मसिद्धि 172
आत्मा 173
भूत वर्तमान भविष्य 174
जन्म-मरण 175
साधु-पुरुष 176
भद्र पुण्य 177
परमात्मा 178
उपादान-उपादेय भाव 179
अज्ञ प्राणी 180
तप वृद्धि 181
निमित्तों में दोष नहीं 182
आत्मा का स्वभाव 183
कर्म शत्रु 184
सहवास 185
परम-सत्य 186
श्रुताराधना 187
शरण 188
तत्त्व विचार 189
विकारी-भिखारी 190
अलिङ्ग स्वभावी 191
बंध-मोक्ष 192
धर्म-धर्मी अभिन्न 193
चैतन्य 194
धर्मधार 195

श्रुतसाधना	196
पुण्यहीन	197
पुण्याश्रित	198
निजत्व	199
अभिन्न	200
दुर्लभता	201
शून्य स्वभाव	202
मंत्रराज	203
स्व परिणमन	204
बाह्य विभूति	205
ध्रुव स्वभाव	206
अलिङ्ग ग्रहण	207
राग–आग	208
तपाराधना	209
एकान्तवास	210
श्रेय–प्रेय	211
उपदेश दक्षता	212
महाकला	213
साधना	214
श्रेष्ठ वक्ता	215
कर्मोदय जनित	216
महादुर्लभ	217
उभय रत्नत्रय	218
स्वात्म प्रदेश	219
भाषा वस्तु नहीं	220

धर्मवीर	221
ब्रह्मधर्म	222
महाशत्रु	223
ज्ञायक	224
प्रभुता	225
कर्ता-हर्ता	226
शिवपुर के साथी	227
स्थिर चित्त	228
किं सुन्दरं किं असुन्दरं	229
आत्मानुशासन	230
सत्यार्थ	231
उपेक्षा भाव	232
सत्यता	233
साध्य सिद्धि	234
पथिक	235
क्षण भंगुर	236
चैतन्य प्राण	237
कार्य सिद्धि	238
गर्त	239
नरश्रेष्ठ	240
वंदना	241
स्वपर घाती	242
स्वर्ग-नरक	243
क्षमा धर्म	244
समत्व	245

ध्यान	246
परम–पद	247
संलग्न	248
विसर्जन	249
मार्दव	250
आर्जव धर्म	251
स्वलीनता	252
स्वभाव–विभाव	253
शुचिता	254
असत्	255
शौचधर्म	256
सत्यधर्म	257
मित भाषी	258
संयम धर्म	259
सच्चा मित्र	260
पंथ	261
तपधर्म	262
त्याग धर्म	263
आकिञ्चन्य धर्म	264
सहज स्वभाव	265
शील धर्म	266
महारोग	267
सँभाल	268
साथी	269
ज्ञेय	270

स्वोपदेश 271
विश्वास 272
पुण्योदय 273
आत्मधर्म 274
अहिंसा धर्म 275
श्रेष्ठ धर्म 276
परम आराध्य 277
क्षण भंगुरता 278
अज्ञता 279
ज्ञायक 280
निज भगवान् 281
स्वयंभू 282
स्वच्छता 283
सँभाल 284
स्वधर्म 285
रागातीत 286
ध्रुव सत्य 287
आगम 288
परम ब्रह्म 289
याचना 290
रसपान 291
सम्यक् श्रद्धान 292
चिद्ब्रह्म 293
क्षण भंगुरता 294
महानता 295

अन्वेषण	296
स्वधर्म	297
आत्मज्ञान	298
रहस्य	299
साधु स्वभाव	300
यशवान	301
विश्वास	302
सिद्धि	303
परमात्मा	304
शुद्धबोध	305
निर्मलता	306
चिति शक्ति	307
विभाव स्वभाव	308
संयोग-वियोग	309
बन्ध विधान	310
सम्यग् दर्शन	311
ध्रुव सत्य	312
पुरुषार्थ	313
उत्कर्ष	314
स्वाधीन	315
विवेक	316
शृंगार	317
पशुवत्	318
शरण	319
आत्मसिद्धि	320

चिद्रूप	321
सत्य	322
ज्ञायक भाव	323
मूल्य	324
महापाप	325
प्रमाद	326
शत्रु	327
नियंत्रण	328
अनंत सुख	329
माध्याह्न बेला	330
अपमान	331
परिवर्तन	332
समय	333
उपेक्षा	334
तृणतुल्य	335
आँसू	336
आत्म शांति	337
विवेक	338
धैर्य	339
शिक्षा शाला	340
महाज्वाला	341
सत्यार्थ	342
अहिंसा	343
मंगलोदय	344
स्वकृत परिणाम	345

आदत	346
परम औषध	347
पूर्ण अभाव	348
आत्महित	349
गूढ़ता	350
पुण्योदय	351
जिनशासन	352
गति कर्मन की	353
भाग्य की पहिचान	354
परीक्षा	355
सत्ता का स्वरूप	356
जियो सुमन जैसा	357
सुकृत्य	358
सँभाल	359
आत्म रक्षा	360
स्वात्म-द्रव्य	361
आत्म स्वभाव	362
शरण	363
कर्त्ता-हर्त्ता	364
स्वाधीनता	365
ज्ञेय स्वभाव	366
स्वतंत्रता	367
स्वतंत्र सत्ता	368
संबंध	369
सत्यार्थ देशना	370

स्वप्रज्ञा	371
प्रज्ञ पुरुष	372
श्रुत सागर	373
निर्मोह भाव	374
आत्म ज्ञान	375
राग	376
श्रुताराधना	377
पगडंडी	378
चैतन्य स्वभाव	379
गुरु उपकार	380
सद्गुरु से सद्बोध	381
राग हटाओ	382
महाज्वाला राग	383
करुणा के दीप	384
परम ज्योति	385
शुद्धात्मा	386
पूर्ण अभाव	387
परमानंद	388
घातक	389
कर्त्तव्य बोध	390
संन्यास	391
सिद्धि	392
सम्पत्ति	393
सत्यार्थ प्रवचन	394
गुंजन	395

ध्रुव स्वभाव	396
सिद्धाचल के भूप	397
परिचय	398
ज्ञान-ज्ञेय स्वभाव	399
वर्धमान वन्दना	400
परमामृत	401
प्रबलशत्रु : मोह	402
कर्मों का सम्राट्	403
परमार्थ ज्ञाता	404
ज्ञायक स्वभावी	405
श्रुत संवेगी	406
धर्म	407
धर्म-अधर्म	408
जिनेन्द्र-देशना	409
चर्चा-चर्या	410
भोग-भावना	411
अवाच्य	412
परम रसायन	413
ममकार-अहंकार	414
ध्रुव-स्वभाव	415
भगवान्-आत्मा	416
मोह-रिपु	417
परिवर्तन	418
नियत-परिणमन	419
किंपाक : विषयसुख	420

भवान्त	421
अध्यात्म विद्या	422
परिवर्तन	423
परमधर्म	424
कर्म–विपाक	425
आप्त	426
ईर्षा	427
आत्मधर्म	428
सम्यक्–प्रज्ञा	429
संयोग	430
समय	431
आत्मावलोकन	432
महाआग	433
सुवचन–पयस	434
पृच्छना	435
पारखी	436
विधि–पुरुषार्थ	437
शरण	438
महान्–सूत्र	439
पुण्योदय	440
स्वभाव–दृष्टि	441
बन्ध्या	442
नियत्ता	443
संसार का कारण	444
ध्रुव ज्ञायक	445

ज्ञानी 446
प्रमाण 447
प्रमाण का फल 448
मध्यस्थ भाव 449
ज्ञाता ही ज्ञानी 450
ब्रह्म धर्म 451
सिद्धि का साधन 452
विशुद्ध दर्शन 453
अनाकांक्षा 454
निर्णय 455
जीवनोपदेश 456

****

सम्पादकीय

परम पूज्य आचार्य विशुद्धसागरजी एक प्रबुद्ध आध्यात्मिक सन्त हैं जो अपने मनीषी शिष्य मुनिवरों के साथ हमारे भारत के कोने-कोने में विचरण कर रहे हैं और जैन धर्म के मूल आत्मिक स्वरूप को जन-जन तक पहुँचाने के लिये अथक प्रयास कर रहे हैं। उनके प्रवचन अत्यन्त सटीक और मार्मिक होते हैं, एक नई ऊर्जा उत्पन्न करते हैं और व्यक्ति को अनदेखा, अनचाहा ऐसा मार्गदर्शन देते हैं जो उसे सीधे मोक्षमार्ग तक पहुँचाने में सक्षम होते हैं। यही कारण है कि उनकी लोकप्रियता एक विचित्र ईर्ष्या का कारण बन रही है। ऐसी ईर्ष्या जिसके पीछे न कोई तुक है, न कोई प्रतिस्पर्धा की भावना है। ज्ञान प्रगल्भता और चरित्र की दृढ़ता ने ताम झाम से दूर रह कर ऐसी ज्योति जलाई है जिससे समाज कभी ऊऋण नहीं हो सकता।

समाज और साहित्यिक जगत् ने अभी तक उनकी देशनाओं का ही अध्ययन किया है और उन देशनाओं में आचार्य कुन्दकुन्द जैसे महान् आध्यात्मिक पारदृष्टाओं की तलस्पर्शी चेतना में अवगाहन करने का प्रयास किया है। पर आज आचार्यश्री का एक नया रूप हमारे समक्ष उतर रहा है जो है वह उनका विशुद्ध कवित्व रूप। ऐसा कवित्व रूप जिसमें न कोई दुराव है, न कोई छिपाव, न कोई विभाव है, न कोई घुमाव। यहाँ तो मात्र स्वभाव के पाने की प्रतिक्षा है। उस प्रतीक्षा में आत्मिक समीक्षा है। जिज्ञासा भरी मुमुक्षा है और दो-दो विद्याओं से जुड़ी प्रभविस्णुता है।

आचार्य श्री की कविताएँ मेरे पास रखी हुई हैं। उनमें मैं अपने को खोजने का प्रयास करता रहा हूँ। पर असफलता ही हाथ लगी। उनके हर शब्द में चुभन है, ललकार है, प्यार है, आदर्श है, प्रेरणा है, प्रभावना है, अनुभूति है, परख है, प्रेक्षण है, समीक्षण है। उन सबको सही अर्थों में देखना सरल नहीं है। उनकी पुनीत आत्मा को देखने के लिये चाहिये सरलता, सहजता, पवित्रता और अन्तर्मुखी वृत्ति जिसमें न कोई तनाव हो, न बिखराव हो, न संशय हो, न कांक्षा हो, मात्र हो रहस्वादी वृत्ति और आध्यात्मिक समता तभी तो वह रागद्वेष रहित परमेश्वर बन सकता है और परमार्थ से जगत् का अकर्ता सिद्ध हो सकता है।

इन गुदगुदाती कविताओं में वस्तु स्वभाव झलकता है, निज स्वभाव का तत्व

उभरता है, स्वतन्त्रता के विशाल चेम्बर में परतन्त्रता की भित्तियाँ खिसकती हैं और मन के अशुभ भाव दुम दबाकर भागते दिखाई देते हैं। सहजानन्दी स्वभाव को पाने में साधक स्वधाम में विश्राम करने की पूरी कोशिश करता है, ज्ञायक भाव पर पूरी तरह विचार करता है पर वह शून्य नहीं हो पाता। प्रत्याध्यान की ओर वह कदम बढ़ाता है, पर आत्मा से पहचान नहीं कर पाता और न विषयातीत हो पाता है। ममत्व की आग में झुलसता निज कल्याण की साधना के समीप भी नहीं पहुँच पाता।

आचार्यश्री के अहो हंसात्मन् सम्बोधन ने प्रतिपल-प्रतिक्षण संसारी व्यक्ति को झक झोरा है, हर्ष और विषाद की नावों से उतरने के लिये आगाह किया है, परभावों से भिन्न निज स्वभाव के अवलोकन की प्रेरणा दी है, पंच परमेष्ठीयों को अपना आदर्श मानकर सांसारिकता से मुक्त होने का आह्वान किया है और अन्तरात्मा की पुकार ने नित्य निरंजन परम पारिणामिक भाव पर चिन्तन करने के लिये उन्मुक्त आकाश दिया है। स्वचतुष्टय और परचतुष्टय की अनैकान्तिक दृष्टि ने साधन को अगल-बगल देखने के लिये विवश कर दिया है, निज की स्वाधीनता के परखने का आश्वासन दिया है, उपादान निमित्त के आंचल को ढ़ग से पकड़ने का लाभ बताया है। भव-भ्रमण की अर्गला को ध्वस्त करने का ग्रीन सिग्नल दिया है और भूतार्थता से अनभिज्ञ साधक को चेतावनी दी है।

आचार्यश्री का काव्य जगत् रहस्यवाद की परतों को खोलता नजर आता है, उसमें आत्मानुभूति की सुगन्ध है, त्रियोग से संयोग त्यागने का आग्रह है, परतन्त्रता से मुक्त हो कर स्वतन्त्रता को वरण करने की आत्मिक सलाह है, स्वयं से संवाद करने का प्रेरणा सूत्र है, निश्चय-व्यवहार को यथावत् समझने समझाने का भाव्य है, **जो है सो है** समयसार की इस भाषा की जीवन्तता का प्रतिबिम्ब है। स्वपद के ध्यान की ललक है, मृत्यु को पहचानने का दर्पण है, प्रबल सुकृत्य के उदय के लिये सोपान है और विवेक जागृत करने का सुन्दर साधन है। वह सुख-दुख को परकृत न बताकर स्वमैव को ही सुख-दुख का आधार बताता है, पुरुषार्थ वृत्ति को जगाता है और पंचम गति दायक दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी रत्नत्रय धारा को प्रवाहित करता है। वस्तुतः वह एक पारस पत्थर है जो व्यक्ति-व्यक्ति में छिपी शुद्धात्मा की चिर शक्ति को उद्घाटित करने के लिये एक चिरन्तन भगवद्भक्ति की शरण देता

है परमात्मा का सघन ध्यान देता है, जिसे छूकर ही साधक सोना बन जाता है।

काव्य का दर्शन सुप्तात्मा को जन्म देता है और भिन्नत्व तथा एकत्व भाव के सम्बन्ध को स्पष्ट करने में जुट जाता है। आचार्यश्री के ही शब्दों में देखिये:-

अहो हंसात्मन्!
एकत्व तेरा धर्म है
तू एक था
एक ही है
एक ही रहेगा,
राग में
संयोग दिख रहा
पर संयोग तुम्हारा
सहारा नहीं,
एक मात्र
एकत्व भाव ही तेरा
परम सहारा है,
अज्ञ प्राणी!
पर संयोगों में
अपना ममत्व कर रहे,
पर आत्महित
निर्ममत्व भाव में ही है।

आचार्यश्री के इस काव्य जगत् की मूल भावना को यदि हम अपने और उनके शब्दों में कहें तो इस प्रकार कह सकते हैं :-

सहजस्वभावी ज्ञायकभावी, शुद्धस्वभावी अविनश्वर,
योगीश्वर हूँ, केवल ज्ञानी, शुद्ध बुद्ध हूँ, परमेश्वर।
धर्मी हूँ मैं धर्म स्वभावी, हूँ अमूर्त क्षायिकज्ञानी,
अतीन्द्रियी हूँ मध्यस्थी हूँ, स्वलीनता का परिणामी ॥ 1 ॥

असहायी हूँ परम सहायी, लब्धिज्ञान से आपूरित,
निर्विकल्प हूँ निरूपाधि हूँ, वीतरागता परिपूरित।
दर्शनज्ञान स्वरूपी हूँ मैं, दृष्टा हूँ मैं, ज्ञाता हूँ,
शून्य स्वभावी परमेष्ठी हूँ, निश्चल हूँ मैं ध्याता हूँ ॥ 2 ॥

स्वयं निरंजन निष्कलंक हूँ, तदाकार तद्रूपी नहीं,
चैतन्य प्रकाशी निर्द्वन्दी हूँ, अरसअरूपी अद्वेषी।
स्वपर प्रकाशी भेद ज्ञानी त्रैकालिक सत्स्वामी हूँ,
सिद्ध स्वरूपी हूँ उपयोगी, शुद्ध बुद्ध महानामी हूँ ॥ 3 ॥

ब्रह्म स्वरूपी हूँ चिद्रूपी, हूँ अखण्ड चैतन्य प्रभो,
निर्ग्रन्थी हूँ, परम तत्व हूँ, हे समदर्शी महाप्रभो।
अनादि सिद्ध हूँ, शुद्ध स्वरूपी, निष्कलंक हूँ, ज्ञानमयी,
पुरुषार्थी हूँ, भेदज्ञानी, निर्विकल्प परिणाममयी।
फिर भी भव में भटक रहा हूँ, मोक्षमार्ग का दीपक दो,
जिनवाणी में श्रद्धानत हूँ, आगमचक्षु दान करो ॥ 4 ॥

मेरे इन शब्दों में और आचार्यश्री के शब्दों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भावों का अंकन है। उनमें एक अजीव साधारणी करण है, मानवीय सम्बन्ध है। यहाँ प्रवत्त भावना के साथ वीतरागता प्राप्ति की तमन्ना है, समाज को उस ओर लाने की तीव्र भावना है। यह काव्य जिस आध्यात्मिक तत्वों से आपूरित है, रहस्यमयी प्रवृत्ति मूलक भावों से भरा हुआ है वह न तुलसी, कबीर में है और न प्रसाद, पन्त और निराला के काव्यों में है। आचार्यश्री की शान्त प्रशान्त साधना उनके काव्य में झलक रही है। वे इसी तरह अपनी आत्मिक साधना में जुटे रहें और निरामयी निष्कलंकी और परम वीतराग अवस्था को प्राप्त करें। इन्हीं भावनाओं के साथ, पूज्य मुनि श्री सुव्रत सागर जी, पूज्य मुनि श्री समत्वसागरजी महाराज को धन्यवाद, जिन्होंने इस कृति की प्रस्तुति में सहयोग प्रदान किया है।

डॉ. प्रो. भागचंद जैन भास्कर
तुकाराम चाल, सदर, नागपुर

मंगलाचरण

युग पुरुष
आदिप्रभु/आदिब्रह्म
प्रजापति हुए
प्रथम पुरुषोत्तम
प्रथम सम्राट्
वत्स हुआ आपका
भरतेश नरेश
चक्रीपद धारक,
द्वितीय पुत्र कामदेव
जग चित्त मोहक
बाहुबली
कर्मारि संघातक
हैं तीर्थेश
आदिश प्रभु।

मुझमें भरदो
प्रभुत्व शक्ति
वाणी में वाग्देवी
विराजे ऐसा वर दो
आदिश प्रभो,
कोटि-कोटि प्रणाम
तुम्हें प्रभुवर
मैं शीघ्र बन सकूँ
शिवपुर वासी।

जिन

भो ज्ञानी!
वस्तु की सत्यता पर
जो पहुँच जाए
वही जिन है
मन इन्द्रिय
कषायों पर
जिसने पूर्ण
विजय प्राप्त
कर ली है
वह जित/जिन है
मोह को जीत कर
ज्ञान स्वभाव में लीन है
वह जित मोही साधु
परमार्थ का वेत्ता ज्ञानी है
परिवर्तन में
अपरिवर्तन
को जो देख रहा
वह सच्चा
दृष्टा है।

सम्यक्बोध

भो ज्ञानी!

तत्त्व-बोध

को प्राप्त कर

बिना सम्यक्बोध

के वस्तु स्वरूप

की उपलब्धि नहीं

वस्तु स्वरूप जाने बिना

सम्यक् नहीं

सम्यक् बिना

मोक्ष मार्ग नहीं

जब मोक्ष मार्ग ही नहीं

तो मोक्ष कैसे?

इसलिए सर्वज्ञ वाणी पर

विश्वास कर

अर्हत प्रवचन में

जैसा वस्तु का

स्वरूप आया है

वैसा ही स्वीकार कर।

जीवत्व

भो ज्ञानी!
वस्तु त्रैकालिक
अहेतुक अकार्य
अकारण है
स्वोपादान में
जीवत्व भाव
न किसी का
कार्य है न किसी का
कारण
स्वसत्ता में
त्रैकालिक
परिणमन शील है

पर्याय से
अपरिणमन शील है
द्रव्य स्वभाव से
स्वदेह परिमाण
असंख्य प्रदेशी है
स्वभाव से।

स्वपर घातक

अहो ज्ञानी!
ध्रुव ज्ञायक पर
कर लक्ष्य
द्रव्य प्राणों से
भाव प्राणों का मत कर घात,
प्राणों से पर प्राणों को
जो करता है घात
वह स्व के
भाव प्राणों का भी
करता है घात
पर के द्रव्य प्राणों
का घात हो सके
न हो सके,
परन्तु स्व–पर के
भाव प्राणों का
घात कर अज्ञप्राणी
पौद्गलिक द्रव्य कर्मों का
बंध कर
संसार में
भ्रमणकर
रहा।

महादुःख

अहो ज्ञानी!
सद्-बोध को
प्राप्त कर
सुबुद्ध बन जाओ
जग भ्रम से स्वात्मा की
रक्षा कर,
अज्ञान महापाप है,
अज्ञान महा दुःख है,
अज्ञान दुःख से पीड़ित
प्राणी संसार गर्त
में गिर रहे
सद्गुरु के
उपदेश सुन
भो ज्ञानी!
सद्मार्ग को
स्वीकार कर।

उन्मत्त हाथी

अहो ज्ञानी!
राग भाव है
मत्त हाथी,
नहीं रहता विवेक
मदोन्मत्त हाथी को
कितने हरे-भरे बगीचे
कर दिए नष्ट,
कितने प्राणियों को
पगतले कुचल दिया,
वही दिशा है राग की

राग में कितने
शील उद्यान
नष्ट हो गए,
कितने चारित्र धारियों के
प्राण चले गए,
हाथी को वश
करने के लिए अंकुश है
रागी हाथी को
वश करने के लिए
ज्ञानांकुश है।

भव भ्रमण

अहो ज्ञानी!
कर्मातीत पर लक्ष्य कर
नहीं होगा लक्ष्य कर्मातीत पर
तो शुद्ध स्वभाव का
वेदन नहीं कर पाएगा
अनादि अविद्या
के वश हुआ जीव
कर्म और
आत्मा में अभेद
मान बैठा,
देह के नाश को
आत्मा का नाश,
देह के उत्पाद को
आत्मा का उत्पाद मान
भवभव में भ्रमण कर रहा
देह से जीव है भिन्न
था भिन्न ही रहेगा
वह काल कभी
नहीं आएगा
जब जीव कर्म हो जाए,
कर्म जीव हो जाए।

चैतन्य धातु

अहो ज्ञानी!
विश्व में है
विशिष्ट द्रव्य
चैतन्य धातु
आत्म द्रव्य,
जिसे जल
आर्द्र नहीं कर पाता,
अग्नि ज्वाला
जला नहीं पाती
पवन सुखा
नहीं पाता
न इसमें
स्पर्श है
न गन्ध
न रूप
न रस वह तो है
अलिङ्गि अमूर्त
अवाच्य
पर गुणों से निर्गुण
स्व गुणों से गुणवान
निज आत्मा ही
परमार्थ है
निज का भगवान्।

आत्म द्रव्य

अहो प्रज्ञ!
तु स्व-ध्रुव को
जान उसे ही देख
निज ध्रुव में
इंद्रिय प्राण नहीं,
आयु प्राण नहीं
प्राणापान प्राण नहीं,
मन बल
प्राण नहीं
वचन बल
प्राण नहीं
काय बल
प्राण नहीं
प्राण द्रव्य
कर्मों के कारण है
आत्मद्रव्यकर्म
भाव कर्म
नोकर्म नहीं,
आत्म-द्रव्य
ध्रुव स्वभावी
उपयोगमयी है,
उपयोगवान
उपयोग
शून्य नहीं।

ध्रुव-अध्रुव

अहो हंसात्मन्!
अध्रुव पर
निज दृष्टि को छोड़
ध्रुव पर लक्ष्य रख,
अध्रुव-अध्रुव ही है
पर्याय अध्रुव है
द्रव्य ध्रुव है
जो क्षण-क्षण में
परिवर्तनशील है,
उसे क्यों
निज राग का
विषय बनाए है?
स्व विवेक का
आश्रय ले
अविनाशी ध्रुव को
अपना ध्येय बनाओ
अध्रुव से दृष्टि हटाओ।

भूतार्थ मुनि

अहो हंसात्मन्!
परमार्थ ज्ञाता
वही है जो
मोहजयी है,
ज्ञान स्वभाव में
लीन है
वही भूतार्थ मुनि है,
नहीं प्राणों पर राग
नहीं कषायों में
विहार करते हैं,
प्रतिपल
निज चैतन्य
आत्माराम में विहार,
नहीं रुकते कभी
पर भावों में
ठहरा करते हैं
क्षण-क्षण
निज
स्वभाव में।

अर्हत् भक्ति

अहो विज्ञात्मन्!
कर भगवत् गुण स्मरण,
प्रभु गुण कीर्तन से
कर्म कलंक
कट जाते हैं,
भव-भव में किए कर्म
क्षण भर में मिट जाते हैं,
एक पल भी
मत जाने दो
अर्हत् गुण गाने से रहित
भव्यवर कमल
खिल जाते
अर्हत् सूर्य
नाम सुनने से
एक नहीं
दो नहीं
करो गुण स्तवन
प्रभु का
सहस्रों नामो से।

एकत्व स्वभाव

अहो विज्ञात्मन्!
स्व पूर्ण को
निजज्ञान का
ज्ञेय बना,
मैं स्वयं में
हूँ पूर्ण
पर से मुझे कोई
प्रयोजन नहीं,
स्व का पर में
है पूर्ण अभाव
स्व में पूर्ण है
निज का पूर्ण स्वभाव,
एकत्व हूँ
मैं एकत्व
के लिए

एकत्व नहीं
किञ्चित् भी
परभाव का
सद्भाव
मेरे में
अन्यत्व
का है
असद् भाव।

चारित्र

अहो प्रज्ञात्मन्!

मृद की मृदुलता

सलिल के साथ है,

सलिल शुष्क हुआ

मृद कठोरता में

परिणत हो जाती है,

चारित्र में

निर्मलता,

वैराग्य की सत्ता से है

चारित्र में वैराग्य

का अभाव हुआ

चारित्र शुष्क हो

जाता है,

वैराग्य को सँभाल,

यदि चारित्र

का फल

निर्वाण चाहिए।

परमसुख

अहो हंसात्मन्!

कषाय के वश हो

निज विज्ञान का

मत कर विनाश,

ज्ञान ही परम सुख है

ज्ञान है परम अमृत

ज्ञान विहीन नर

तिर्यंच तुल्य है।

अज्ञान है महाव्याधी

अज्ञान है घोर दुःख,

ज्ञानी को दरिद्रता भी

भूषण है

ज्ञान विहीन की

सम्पत्ति

मुर्दे के ऊपर

पुष्पवत है।

पुण्य

अहो प्रज्ञ!
पुण्य द्रव्य के
सानिध्य पर
सारे सातोदय हैं,
पुण्यक्षीण में
असातोदय स्वकार्य में
लीन हो जाते हैं।
क्षण-क्षण में पुण्य की
कर रक्षा,
मन से वचन से
काय से, एक पल भी
परिणामों में
कषाय को मत रख,
कषाय भाव
पुण्य का करता है क्षय
पाप की करता है वृद्धि
पुण्य का
करता है
क्षय।

सँभालो

अहो हंसात्मन्!
स्व परिणाम सँभाल
अन्य में कोई दोष नहीं,
यदि कोई दे तुझे दोष
वह भी तेरे पूर्व कर्मों का
ही है दोष
ऐसा तू सम्यक् शोच
पर में दोष देखना
स्व की निर्दोषता नहीं,
स्व निर्दोषता चाहिए तो
स्वदोष देखो और
आत्मनिंदा कर
दोष त्याग सद्गुण प्राप्त कर
सद्गुणों की
वृद्धि ही
जीव को भगवद् दशा
देती है।

स्वोपादान

अहो प्रज्ञात्मन्!
लोक में जगत् को
खुश करना
स्व को दुखित करना है,
प्रत्येक जीव का स्वोपादान
सुख दुःख का कारण है
अन्य तो अन्य ही है
वह तो निमित्त मात्र है
जिसे दुःख ही भोगना है
उसके लिए अन्य उपाय नहीं
कर सकता

मंद कर्मोदय पर ही
अन्य के उपकार
सहकारी होते हैं
तीव्र उदय पर
कोई नहीं बनता
कार्यकारी,
न सहकारी।

श्रमण

अहो विज्ञात्मन्!

श्रमण जो करे श्रम
स्वात्म देव के
दर्शन का,
निज शुद्धात्म
अवलोकन का,
निज में निज
के रमण का,
परभावों से
स्वस्वभाव के
पृथकीकरण का,
परलोक से
भिन्न हो
निजलोक के
स्पर्शन का

मिथ्यात्व, असंयम
प्रमाद, कषाय
योग के अभाव का,
वही है सच्चा
वीतरागी
भावलिंगी
श्रमण।

स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
अनेक द्रव्यों के
समुदाय से बनी
तेरी असमानजातीय पर्याय,
फिर भी
तू एक है
तेरी स्वभाव दशा
अस्खलित है,
स्वद्रव्य क्षेत्र
काल भाव स्वरूप है,
तू अपने
स्वभाव से
अच्युत है,

असमानजातीय
पर्याय में
होते हुए भी
द्रव्य स्वतंत्र है
व्यवहार से
बन्ध दशा में
कर्म से परतंत्र है,
फिर भी
अनुभूति में आता
स्वतंत्र है।

उपादान

अहो ज्ञानी!
प्रत्येक ज्ञेय का
चतुष्टय भिन्न है
ज्ञाता तेरा
चतुष्टय भिन्न है
तू स्वपुरुषार्थ से
अपने आपको
संस्कृत कर
पर के परिणमन में
तू है
अकिंचत्कर
स्व के
परिणमन
का ही
तू है
योग्य उपादान।

संयोग-वियोग

अहो हंसात्मन्!
अल्प समय का
संयोग महादु:ख
दे जाता है,
जिनका हुआ है
संयोग
उनका वियोग नियत है,
संयोग एवं वियोग को
सुख-दु:ख मानते हो
दोंनो ही वस्तु व्यवस्था है
वस्तु का स्वभाव
परिणमन शील है
स्व स्वभाव में
वस्तु परिणामी है,
पर स्वभाव है
अपरिणामी
उभयात्मक वस्तु को देख
संयोग वियोग में तटस्थ हो जा
जो है सो है।

पहिचान

अहो हंसात्मन्!
ईर्षा पिशुनता
भावों की कर गवेषणा
स्व अंत:करण में
धर्मात्मा के भेष में
ईर्षा की ज्वाला में
तो नहीं झुलस रहा
पिशुनता की
खाई में तो नहीं
गिर रहा
तू स्वयं ही देख
स्वयं ही जान
अन्य से मत करा
स्व की पहिचान,
अन्य तो है अन्य
वह तुझे
क्या पहिचान पाएगा?
स्व का
सच्चा खोजी
तू ही जान।

महादुर्लभ

अहो विज्ञात्मन्!
दुर्लभ है सुकुल
सुयश का पाना,
दुर्लभ है बोधी ज्ञान
रत्नत्रय का पाना,
दुर्लभ है निर्मल
संयम का धरना,
दुर्लभ है
शुद्धात्मभाव
में जाना
दुर्लभ से महादुर्लभ है
शुद्ध भावों का सुफल
निर्वाण श्री का पाना
धन्य-धन्य-धन्य हैं
वे नरोत्तम
जिन्होंने
नरभव पाकर
निर्वाण श्री को
वर लिया।

आत्मधर्म

अहो हंसात्मन्!
स्व धर्म
को पहिचान
शील संयम
स्वाश्रितभूत
आत्मधर्म की
निर्मलता हेतु है,
बिना निर्दोष शील संयम
तप त्याग के
परमधर्म की
सिद्धि है असंभव,
शुद्ध ज्ञान
शुद्ध दर्शन
केवल ज्ञान
केवल दर्शन
आत्मा का
शुद्ध धर्म है,
जो जीव है
शुद्धज्ञान दर्शन
से युक्त
वही
धर्मात्मा है
परमात्मा।

कलियुग

अहो हंसात्मन्!
दग्ध काल में
परिणाम जगत्
के काले हैं,
श्रेष्ठता में
निम्नता को
सँभाले हैं,
सम्मान स्व
का अपमान
पर का है
इस काल
की पहिचान,
दोष दृष्टि में
नेत्र खुले हैं
गुण दृष्टि में
नेत्र बन्द हैं

अहो कलियुग!
तेरी महिमा
क्या गाएँ
जिनदेव छोड़
कुदेवों की
होती है पूजा
संयम के स्थान पर
असंयम का सम्मान है।

महागर्त

अहो विज्ञात्मन्!
आशा के पाश
में जो फँसा
विशुद्धि के प्राण
चले गए।
आत्म विशुद्धि
को जीवित
रखना है, तो
आशा के पाश
से आत्मरक्षा कर।
आशा है
एक महागर्त
इसे भर पाना है कठिन,
सारे विश्व का
द्रव्य भी डाल दो
तब भी
वह होगा
खाली का खाली।

परिवर्तन

अहो विशुद्धात्मन्!
समय की नहीं
कोई नियत्ता
क्षण क्षण में
हो रहा है
परिवर्तन
पर्याय कल
पलायन कर जाए
नहीं किसी को है ज्ञात,
कब निकल जाए
अंतिम बरात
जो पुष्प खिला था
डाली पर
वह बढ़ता है आकार
नालीपर,
प्रचण्ड सूर्य भी अस्त
होते देख जाता है,
राज्य सिंहासन
पर बैठने वाले
भी चिता पर
बैठे देखे
जाते।

अध्रुव

अहो हंसात्मन्!
संसार में पर्याय
का परिणमन
ओस बिन्दु
शक्रधनु, आकाश
विद्युत, जल बुलबुले वत
अध्रुव है
पलमात्र में
विलीन हो जाती है
जिनके साथ
करता है जीव
हर्ष विषाद
वे क्षण में
शान्त हो जाते हैं
नहीं दिखते वे जन
पृथ्वी अम्बर में
पंचभूत से युक्त शरीर
यहीं पड़ा रह जाता है
ध्रुव आत्म-द्रव्य
नवीन पर्याय में
चला जाता है।

अकेला

अहो हंसात्मन्!
जब तू जाएगा
इस तन पिंजर से
तब तू क्या-क्या
और साथ ले जाएगा?
यह भी तो विचार
जब आया था,
तब साथ तु क्या-क्या
लाया था?
न तु तन
ले जा पाएगा
न ही धन, स्त्री पुत्र
संग साथी
गुरु-शिष्य
यशःकीर्ति
लोक पूजा
योवन सभी
छोड़ तू एक
अकेला ही जाएगा।

समता

अहो विज्ञात्मन्!
शोक उदासता नहीं
प्रज्ञ पुरुषों की
पहिचान
कष्ट उपसर्गों
परिषहों में,
जो रखते धैर्य
समता भाव
वे ही होते
विश्व विख्यात।

समता ने
पार्श्वनाथ मुनिराज
को बना दिया,
पार्श्वनाथ भगवान्
पाना है भगवत्ता
तो स्वीकारो
समता की सत्ता,
शोक-विषाद
का कर त्याग
उपेक्षा भाव को
हृदय में धार।

शुद्ध-बुद्ध

अहो प्रज्ञात्मन्!
पर भावों से भिन्न
निज स्वभाव को देख
स्वरूपास्तित्त्व
ही तु है
अन्य तु नहीं
तु अन्य नहीं
तु तो स्वयं ही
शुद्ध-बुद्ध-अविरुद्ध
त्रैकाल निज गुणों से
मंडित टंकोत्कीर्ण
ज्ञायक स्वभावी
भगवान् आत्मा है

स्व का
उत्पाद व्यय-ध्रौव्य भाव
स्वयं में है
निज द्रव्य गुण
पर्याय से सदा
सत्तावान है।

तत्त्वबोध

अहो हंसात्मन्!
तत्त्व की भूतार्थता
का कर बोध,
सम्यक् तत्त्वबोध
के अभाव में
नहीं कर पा रहा जीव
आत्मशोध,
आत्मशोध का
साधन है निर्मल
तत्त्व बोध,
हुए आज तक,
हो रहे वर्तमान में
होंगे भविष्य में, वे तत्त्व बोध
से ही हुए।
जैसी वस्तु है
वैसा ही जानना
न्युनता अधिकता से रिक्त
विपरीतता रहित
जो है ज्ञान
वही जानो सम्यक्ज्ञान।

समता

अहो हंसात्मन्!
स्व शक्ति को
कर वर्धमान,
पर मुझे पीड़ित
न करे,
ऐसा मत शोच,
शोचना ही है
तो ऐसा शोच,
पर की पीड़ा को
मैं कर्म विपाक
मानकर समता से
कैसे सहनकर सकूँ?
वह समता हो
मेरे पास
जो थी
प्रभु पार्श्वनाथ
के पास।

रक्षा कवच

अहो हंसात्मन्!
धर उर में
समता भाव,
साधक के पास
यदि है कोई
आत्म रक्षा कवच
कर्म–अरि से
विजय प्राप्ति
के लिए, तो
वह है समता भाव,
समताशील के ही है
सफल सर्व साधना
समता हीन की
है निष्फल
सर्व आराधना,
वन में
भवन में
मान/अपमान में
धरना सदा
समता भावना।

विस्मृति द्रुतं

अहो विशुद्धात्मन्!
भूल जाओ जगत्
की स्मृतियाँ,
बार-बार करोगे
पर का स्मरण,
स्वयं का
हो जाएगा विस्मरण,
आनंद ज्ञानघन
का करना है
रसपान,
तो स्वीकारो
जिनवर के वचन

आत्मा परभावों से
भिन्न का जयघोष
स्वात्म प्रदेशों में
प्रदेश-प्रदेश पर
गुंजायमान
जब होगा,
जब कोई तेरे साथ
नहीं होगा।

साधु स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
जीवन जियो
मिश्रीवत,
पर को भी मीठा कर दे,
परन्तु स्व को
फीका न होने दे
अपने गुणों से
पर को
प्रभावित करले,
परन्तु
अन्य के दुर्गणों से
प्रभावित न हो

चन्दनवृक्ष में भुजंग
लिपटे होने पर भी
चन्दन विष नहीं हो जाता
साधुजन दुष्टों
के मध्य भी
साधु ही
रहते हैं।

गुणी वन्दनीय

अहो विज्ञात्मन्!
गुणों की है वन्दना
गुणों की है पूजा,
निर्गुण की नहीं वन्दना
निर्गुण की नहीं पूजा
गुण हीन नहीं
वन्दनीय पूज्यनीय
चाहे हो वह श्रमण
चाहे हो श्रावक,
पूजा की
भावना मत भाओ,
गुणों की
भावना भावो,
सद्‌गुण होंगे,
तो होगी
स्वयमेव पूजा।

वस्तु स्वभाव

अहो प्रज्ञात्मन्!
शोक सुख का
होता नहीं,
पर के वियोग में
अज्ञ कर रहा शोक
ऐसे जैसे कि कभी स्वयं
मरा ही नहीं,
कर विचार
स्व के प्रति
कितने बार जन्मा
कितने बार मरा
इसमें आश्चर्य
ही क्या?

पर्याय का
परिणमन तो
वस्तु का स्वभाव है,
जो सम्प्रति जन्म है,
वह भूत पर्यायों में मरा,
यही जन्म-मरण का
क्रम है।

बंधभाव

अहो विज्ञात्मन्!
जहाँ मरण है
वहाँ जन्म भी है,
जहाँ जन्म है
वहाँ मरण भी है,
उत्पाद व्यय
अखण्ड ध्रुव में
एक साथ चल रहे,
ज्ञानी देखता है
ज्ञायक भाव से
अज्ञानी देखता है
राग भाव से,
ज्ञायक भाव में
बन्ध भाव का है
अभाव,
रागभाव से
बन्ध भाव है,
कर राग का अभाव
हो जाएगा
स्वयं बन्ध
का अभाव।

सम्यक् दर्शन

अहो ज्ञानी!
तत्त्व निर्णय है सम्यक्
तो जानो जीवन में
सम्यक् दर्शन,
तत्त्व निर्णय
यदि नहीं है सम्यक्
तो स्व जीवन में
सम्यक् दर्शन
नहीं मानो,

सम्यक्त्व
के लिए
तत्त्वार्थ का अधिगम
समीचीन
होना अनिवार्य है
बिना सम्यक्
अधिगम
और यथार्थ
श्रद्धान के
सम्यक् दर्शन
होता नहीं।

वस्तु स्वरूप

अहो ज्ञानी!
समझ वस्तु की
भूतार्थता को
एक वस्तु एकभूत है
वही अनेक भूत है
एक ही कहे
वह मिथ्यादृष्टि है,
अनेक एक जो कहे
वही सत्यार्थ स्याद्वादी है
द्रव्य से देखो
तो वस्तुअखण्ड एक है,
गुण एवं पर्याय
से देखें तो
वस्तु अनेक
स्वभावी है।

देशना

अहो विज्ञात्मन्!
सर्वज्ञ की सत्यार्थ
देशना को जान
जो है अनेकान्त
स्याद्वादमयी,
वही है सम्यक् देशना
एक-एक को ही
जो कहे वह नहीं
सम्यक् देशना
जितने हैं लोक में
वचनवाद उतने ही
हैं नयवाद,
जितने हैं स्याद्-शून्य नयवाद
उतने ही पर समय जान,
पर समयों के वाद हैं
सर्वथावाद वे सब हैं
मिथ्यावाद, जिनवचन हैं
कथंचितवाद, इसलिए
जानो सत्यार्थ वाद्।

सँभाल

अहो प्रज्ञात्मन्!
आत्मज्ञान शून्य जीव
भव-भव में भ्रमण कर रहे,
विषय-कषाय के वश हो
परस्पर में लड़ रहे,
नहीं पर लोक पर विश्वास
यहीं सब कुछ मान रहे,
परोक्ष प्रमाण माने बिना
प्रत्यक्ष प्रमाण जानेगा कैसे?

परोक्ष प्रमाण को
जानकर
प्रत्यक्ष को सँभाल
वर्तमान सम्यक् तो
भविष्य उज्जवल है।

निजधर्म

अहो प्रज्ञात्मन्!
आत्मा की पवित्रता
जल स्नान में नहीं,
जल स्नान से यदि
आत्मा पवित्र है, तो
नदी तालाबों सागरों में
रहते हैं जलचर
उन सबकी मुक्ति हो जाए,
नहीं तिरता जीव
गंगा–जमुना–पुष्कर में
नहाने से
कल्याण होगा तो
रत्नत्रय तीर्थ में जाने से,
आत्मनदी में हो जा
निमग्न यदि चाहता है
निजधर्म।

निरुपराग

अहो हंसात्मन्!

पर धर्मों में निजधर्म का

अन्वेषण कैसे?

निज धर्म की

खोज करना है, तो

निज में ही करो।

तु ज्ञानानंद

स्वभावी है,

शुभाशुभ

भावों से शून्य

स्वभावी है,

शुभाशुभ भाव

पराश्रित है,

शुद्धभाव ही मात्र

निरुपराग स्वभावी है।

तत्त्व विचार

अहो विज्ञात्मन्!
जीवन है विद्युतवत् चंचल,
मानव पर्याय है असार
विवेक ज्ञान से कर स्वयं
सम्यक् निर्णय
करना क्या है?
काम भोग में लीन होकर
भव भ्रमण या तत्त्व विचार?
भोगों से विरक्त हो
धर्म मार्ग में बुद्धि
स्थिर कर,
निर्वाण दीक्षा
धारण कर,
यदि पाना चाहता है
पद निर्वाण।

द्रव्य-पर्याय

अहो प्रज्ञ!
भूतार्थ बोध को प्राप्त कर
जब-तक
सत्यार्थ का प्रकाश नहीं
जीवन में तब-तक
मार्ग अन्धकारमय है,
सम्यक् तत्त्व है जैसा, वैसा कर निर्णय
वस्तु न एकान्त उदित ही है
न अपैति ही है,
सत् का नाश नहीं,
असत् का उत्पाद् नहीं, एकान्त में
क्रियाकारक भी नहीं,
कहे कोई ऐसा दीपक
बुझ गया तो क्या
नाश नहीं? अरे भाई!
प्रकाश पर्याय से युक्त
पुद्गल पर्याय को प्राप्त हुआ
न कि पुद्गल का नाश हुआ,
द्रव्य तो ध्रौव्य है
पर्याय अध्रुव है
ऐसा सम्यक्ज्ञान।

वस्तु व्यवस्था

अहो हंसात्मन्!

द्रव्य सत् है, जो कि

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से

युक्त है,

प्रत्येक द्रव्य का

यही स्वभाव है

अन्य नहीं अन्यथा नहीं,

जो अज्ञ नहीं जान सका

इस परम सत्य को,

वह मिथ्यात्व में अपने

जीवन को कर रहा नष्ट है,

न लोक में

द्रव्य का कर्त्ता परमात्मा है,

न कोई जड़ विज्ञान है,

वस्तु व्यवस्था त्रैलोक्य में

स्वयं व्यवस्थित है

यही सम्यज्ञान है।

मुक्ति नहीं

अहो हंसात्मन्!
द्रव्य लिङ्ग के अभाव में
भाव लिङ्ग बनता नहीं,
पर ध्यान रख मित्र!
द्रव्य लिङ्ग भाव लिङ्ग होता नहीं,
रत्नात्रय से मण्डित आत्मा ही
भावलिङ्गी है, वह रत्नत्रय
दिखता द्रव्य लिङ्ग में ही,
वस्त्र धारण किए पुरुष-स्त्री के
जिनलिङ्ग बनता नहीं,
जिनलिङ्ग के अभाव में
भावलिङ्ग
कल्पना आकाश पुष्पवत ही कही,
स्त्री पर्याय में
दिगम्बर जिनलिङ्ग होता ही नहीं,
यही कारण स्त्री की मुक्ति
जिनशासन में कही ही नहीं।

नारी पर्याय

अहो प्रज्ञात्मन्!
नारी पर्याय में पूर्ण
अहिंसा व्रत पलता नहीं,
मांस-मांस होता है, मांसधर्म
उसकाल में परिणामों की
उत्कृष्ट पवित्रता आती नहीं
मल स्थानों काँख आँचल प्रदेश में
समूर्च्छन मानव जाति के जीव
उत्पन्न होते और मरण को प्राप्त होते हैं

वह अहिंसा व्रत पूर्ण नहीं, इसलिए
उपचार से अहिंसा व्रत आगम
कहता है सही, नारी पर्याय
की विषमता से निर्वस्त्र रहा
जा सकता नहीं,
पूर्ण संयम के अभाव में
मोक्ष मिलता नहीं,
इसलिए स्त्रीपर्याय में
मोक्ष होता नहीं।

पुरुषार्थ

अहो विज्ञ!
नारी पर्याय में
दीन भाव लाना नहीं
क्षण मात्र के परिणाम
नारी से नर
बना देते हैं,
स्त्री पर्याय में होने पर भी
करो कर्म पुरुष के,
पुरुष बनने में देर लगती नहीं,
माया-कषाय अति शृंगार
विषयलोलुपता की करो हानी,
मार्दवभाव आर्जवभाव का
करो अभ्यास,
बनो निस्पृह त्यागी,
करो सम्यक् पुरुषार्थ,
स्वभाव लीनता का
फिर बनो
नारी से नर-नारायण।

स्वात्म धर्म

अहो प्रज्ञ!
लोक रंजन नहीं
आत्मधर्म, आत्मधर्म
परभावों से है पूर्ण निरपेक्ष
आत्मधर्म में है
शत्रु–मित्र भाव का पूर्ण अभाव
आत्म प्रभावना में लीन साधक
रत्नत्रय धर्म का ही करता है
अवलोकन, अन्य में मध्यस्थ भाव
सुरलोक की सम्पदा पर
ममता नहीं, नर्कलोक
लोक की विपदा पर
विसमता नहीं
मात्र स्वात्म देव पर
ही हो लक्ष्य।

साम्यभाव

अहो हंसात्मन्!
साम्यभाव है
जिसके अन्दर उसका नहीं होता
कभी मान अपमान
नहीं है साम्य भाव जिसके
अंत:करण में उसका होता है
पग-पग में मान अपमान
क्षण मात्र भी उसे नहीं
मिलता वसुधा पर चैन
मान के अहंकार में तो
कभी अपमान के प्रतिशोध में
रहता है दिनरात बैचेन।

वस्तु-व्यवस्था

अहो हंसात्मन्!
प्रत्येक द्रव्य का
परिणाम परिणामी भाव
पूर्ण स्वतंत्र है, पर के
परिणाम परिणामी भावों में भिन्न
न परिणाम है न परिणामी
फिर भी अज्ञ प्राणी
क्यों कर्त्ताबन, क्यों
क्लेश को प्राप्त हो रहा?
वस्तु की व्यवस्था ही
स्वतंत्र है, स्व परिणामों
की विशुद्धि पर
पुरुषार्थ करना ही
सत्यार्थ धर्मात्मा की
पहिचान है,
अन्य तो
अन्य ही है
ऐसा जो जाने
वही ज्ञानी है।

पहिचान

अहो विज्ञात्मन्!
पर द्रव्य को स्वभूत
बनाने का कभी स्वप्न में भी
विचार लाना नहीं
जिस शरीर में निवास
कर रहा जीव,
उस शरीर को ही तो
स्वात्मभूत कर सका नहीं जीव
अनेक पुद्गलों का पिण्ड है शरीर

नहीं चैतन्य धातु से निर्मित है
यह शरीर
साथ रहना भिन्न है
स्वभाव होना भिन्न है,
जीव द्रव्य भिन्न
जीव का गुण भिन्न है
जीव की स्वपर्याय भी भिन्न है
कर्म नोकर्म नहीं हैं
जीव के धर्म,
ये तो पुद्गल पिण्ड।

अतत् तत्

अहो चैतन्य!
तत् में देख तत् को
अतत् में तत् मिलता नहीं,
अज्ञ प्राणी भूतार्थ बोध से
विमुख हो अतत् में भी
खोज रहा तत् को,
पानी मथने से घृत निकलता
बालु पेलने से तेल
टपकता नहीं,
वैसे ही
व्यर्थ का विकल्प करले प्राणी,
परंतु अतत् कभी
तत् होगा नहीं।

महाधैर्यवान्

अहो हंसात्मन्!
ग्रीष्म में गिरि-शिखरों पर,
वर्षाकाल में तरु के नीचे
शीतकाल में सरिता,
सरोवर-सागर तट पर
बैठे समकित सखा लेकर,
न करें याद शीतल पानक की,
न छतरी भवनों की,
धैर्य कंबल ताने
नहीं करें याद शाल-दुसाल
रजाई कंबल की

धरती शेज,
भुजा तकिया, अम्बर वस्त्र
ऐसे सच्चे साधु दिगम्बर
प्रणति उन चरणों में
सारे अवनि अम्बर की।

भावलिङ्गी श्रमण

अहो हंसात्मन्!
निर्ग्रन्थ दिगम्बर
परम तपोधन
नहीं देते
किसी को वरदान और श्राप,
रहते हैं प्रतिपल
पर भावों से पूर्ण उदास,
आत्मधर्म ही प्रिय जिन्हें
वे रहते पर मित्रामित्रभाव शून्य

सच्चे साधु का न होता
कोई मित्र न ही शत्रु
सर्व प्राणियों के प्रति
रखते हैं साम्यभाव
वे वन्दनीय
भाव-लिङ्गी श्रमण हैं।

अरिहंत देव

अहो हंसात्मन्!
सर्वज्ञ सर्वदृष्टा
एक ही परमात्मा जो है
वीतरागी सर्व तत्त्वज्ञाता,
हितोपदेशी देवाधिदेव
अरिहंत देव,
सात तत्त्व
नौ पदार्थों के हैं
पूर्ण ज्ञाता,
विश्वव्यापी है ज्ञान जिनका,

वे ही हैं
परम अखिलेश,
किया शमन विषय विष का
और कषाय ज्वाला का,
हैं वह परमधर्मेश
नहीं आशा तृण-तुष की
आशा को जीतकर
विश्व विजयी हो गए।

तटस्थ-भाव

अहो विज्ञात्मन्!
जीवन एक पथ है
जिसमें आते जाते हैं
अनेक पन्थिगण,
पर पथ पंथियों के
साथ नहीं,
न जाता न आता है,
वह तो रहता है, पूर्ण तटस्थ
चाहे आएँ पुण्य के खजाने,
चाहे विपत्तियों
के बादल
दोनों में
रहना तटस्थ पथवत्

पुण्य पाप दोनों
के विपाक नहीं
शाश्वत हैं,
ध्रुवधाम है
एक आत्म द्रव्य।

ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान

अहो हंसात्मन्!
विहार पथ में दिखते हैं
अनेक वन उपवन
सरोवर सरिताएँ
गिरि कन्दराएँ
मल
सुगन्ध पूर्ण वन स्थल,
कहीं होती हैं पूर्ण कुटियाँ
कहीं शीश महल,
कहीं मिलते रंगोली के चौक,
कहीं बिखरे मिलते काँटे हैं,
पर ज्ञानी
देखता है ज्ञायक भाव से,
ये जो भी है वह
मात्र ज्ञेय ही है
मेरा ज्ञान नहीं
ज्ञाता नहीं,
जो है सो है।

संसार

अहो श्रमण!
पराश्रित भाव पर
ही है पुण्य पाप भूत
बन्ध का कारण है,
शुभ द्रव्यों के आश्रय से
होता है पुण्य बन्ध,
अशुभ पाप द्रव्यों के आश्रय से
होता है पुण्य बन्ध,
उभय बन्धों का विपाक,
तो संसार ही है
एक है साधन स्वर्ग का
तो दूसरा है साधन
नरक का,
मोक्ष तो तभी होगा प्राप्त
जब पुण्य पाप रहित
स्वाश्रय का जीव
लेगा आलम्बन।

पूजा

अहो विज्ञात्मन्!

लोक में होती पूजा को

स्वपूजा मत समझ,

यह तो पुण्यधर्म की पूजा है

तेरी पूजा तो वही होगी

जो निज में निज की पूजा है,

नहीं जल चन्दन

की तेरी पूजा है,

निजानन्द में लीनता

की ही तेरी पूजा है,

समरसी भाव की

लीनता ही

निज की पूजा है।

आत्मपूज्यता

अहो हंसात्मन्!
पूजा को देखकर
निज पूज्यता से दूर
नहीं हो जाना,
लोक की पूजा
आत्म पूज्यता
का प्रतीक नहीं,
रत्नत्रय धर्म ही
आत्मपूज्यता का धर्म है,
जो हुए हैं परमपूज्य
होंगे भविष्य में,
हैं वर्तमान में, वे सब
स्वात्मधर्म से ही
हुए हैं परमपूज्य,
वही लक्ष्य हो
साधक का
अन्य नहीं।

शिवगामी

अहो हंसात्मन्!
जाने जिनेन्द्र को
परम आस्था से,
देखे सिद्धों को
भक्ति के साथ,
अनगारों पर है विश्वास,
त्रस स्थावरों पर है,
करुणा की आँख
उसे सम्यक्
श्रद्धान के साथ
शुभोपयोगी जानो,
उसे ही परंपरा से
शिवगामी मानो।

परमगुरु

अहो प्रज्ञ!

चिद्‌ब्रह्म ही परम गुरु

निज गुरु से कर मिलन

स्वगुण प्रधान है जो गुरु

वही आत्मदेव मेरा ध्रुव गुरु,

ज्ञायक भाव का दे दे बोध

समरसी में लीन गुरु सच्चे गुरु

विषय कषाय आशाओं से है

जो अतीत

वही है परमार्थ भूत गुरु,

अन्य नहीं

अन्यथा नहीं।

पुरुषार्थ

अहो हंसात्म्!

कर अभ्यास

परभावों से निजभाव को

भिन्न करने का,

पर से भिन्नत्व का निर्णय ही

परम विवेक है

पर से भिन्नत्व ही

परमार्थ भिन्न में प्रवेश है,

सच्चा साधक

सर्वाधिक करता है पुरुषार्थ

निज स्वतंत्रता के

अनुभव का।

स्वाश्रय

अहो हंसात्मन्!
स्वाश्रय में कोई
विसंवाद नहीं,
पराश्रय में
शान्ति स्वरूप की
अनुभूति के लिए स्थान नहीं,
लोक में जो भी है
विसंवाद
वह सब पराश्रय में है,

जहाँ एकत्व-विभक्त्व
भाव का है अभाव
वहाँ पर होता है
विसंवाद का सद्भाव,
मत देख पर संबंधों को
आनंद गुण का करना है
रसपान यदि।

शरण

अहो हंसात्मन्!
पर के विकल्पों में
निज को क्यों
व्यर्थ के विकल्प में
डाल रहा
पुण्यक्षीणता में
पर कोई उपकार
किसी का कर सकता नहीं,
कर्मोदय मान
शांतभाव से
समय को निकाल,
धर्म ही होता है शरण,
अन्य कोई नहीं।

मत जाओ
किसी के द्वार,
किंचित् भी कोई
अशुभ में
सहकारी होता नहीं।

महामंत्र

अहो प्रज्ञ!
सुख में, दु:ख में,
भयस्थान में, वन में
रण में, करो जाप्य
महामंत्र का,
चाहे पवित्र हो अपवित्र हो
ध्यायो पंच नमस्कार
मंत्र को,
पाप नष्ट होते हैं तत्क्षण
विश्व को शीतल
समीर है, पक्षी को
निर्मल नीड़ है,

पथिक को गहन
छायादार वट-वृक्ष है,
भूखे को मिष्ट भोजन
मन्त्रराज/महामंत्र
णमोकार है।

विशुद्धि

अहो प्रज्ञ!
वाणी की निर्मलता
निज गुण स्तवन से
शरीर की पवित्रता है,
प्रभु पूजा गुरु दान से
चित्त की विशुद्धि है।
श्रीजिन उपदेश के
सम्यक् चिंतवन से,
वह मन-वचन-काय
सफल है
जिसका उपयोग
जिन देव श्रुत-गुरु
में हो रहा।

ज्ञायक स्वभावी

अहो विज्ञात्मन्!
कर अभ्यास सतत
प्रतिपल प्रतिक्षण
भेद विज्ञान का,
न अशुभ उपयोगी हूँ
न शुभोपयोगी हूँ,
मैं निरुपराग शुद्धउपयोगी हूँ,
मेरे में बन्ध नहीं
मोक्ष नहीं,
बन्ध मोक्ष के भाव के
भावों से शून्य हूँ,
मैं वही हूँ
जो हूँ सो हूँ
ज्ञायक स्वभावी हूँ।

आत्मशोध

अहो हंसात्मन्!
विवेक बोध
आत्मशोध का है
परम साधन,
विवेक विहीन
नहीं कर सकता
स्वपर का कल्याण,
स्वहित परहित में
बनता निमित्त विवेक ज्ञान,
प्राणी के जीवन में
सब नष्ट हो जाए,
परंतु विवेक बोध
विलीन न होने पाए

विवेक है तो
दुःख में सुख है
विवेक नहीं,
तो सुख में भी
दुःख है।

सत्

अहो प्रज्ञ!

सत् वही है जो

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यभूत है,

वही द्रव्य का लक्षण है

जो कि

गुण-पर्याय से युक्त है,

गुण जहाँ होंगे

वहाँ द्रव्य नियत है

जहाँ द्रव्य है वहाँ गुण

पर्याय नियत है,

एक का जहाँ अभाव

वहाँ सबका ही

होगा अभाव।

कोई कर्त्ता नहीं

अहो प्रज्ञ!

वस्तु धर्म

त्रैकालिक जान,

नहीं इसके

उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य में

अन्य किसी का स्थान,

प्रत्येक का परिणमन

स्व परिणाम से होता है।

अन्य कोई कर्त्ता इनका

परिणमन नहीं कराता

इस ध्रुव सत्य को

तू निश्चय से जान,

इसे ही मान

अन्य

नहीं अन्यथा

नहीं।

अवाच्य

अहो हंसात्मन्!
मन वाणी देह ये
नहीं विदेही का स्वभाव,
विदेही तो है पूर्ण
मन वाणी देह से शून्य,
वह तो मात्र ज्ञानमूर्त्त है
नहीं इसका कोई
अन्य स्वरूप,
न रस
न गन्ध, न वर्ण
न स्पर्श,
वह तो
अलिङ्गी है
अवाच्य।

सद्बोध

अहो विज्ञात्मन्!
परमार्थ को जाने बिना
अज्ञजन अदर्शनीय
वस्तु के दर्शन कर रहे,
जिनका अवलोकन,
आत्म अवलोकन को
नष्ट कर रहा
वे हैं विचारे अन्धे
जो जिनदेव के
दर्शन नहीं कर रहे,
जो नहीं करते
सद्शास्त्रों का
श्रद्धा से श्रवण
वे हैं बधिर विचारे
करुणा के पात्र
सद्बोध की हो
प्राप्ति उन्हें।

मति कर सुमति

अहो हंसात्मन्!
सत्यार्थ का ज्ञान
तभी होता जब मति
सुमति होती है,
कुमति में सत्यार्थ बोध का
प्रवेश ही नहीं होता,
वस्तु की भूतार्थता को
जानना है तो
पापमति का कर विसर्जन
धर्ममति की कर
निज में स्थापना,
तब होगा
सत्यार्थ ज्ञान में
तेरा समर्पण।

वस्तुस्वभाव

अहो प्रज्ञ!

भूतार्थ वस्तु स्वभाव
पर भावों से है भिन्न,
निज स्वभाव में है अभिन्न
पर भावों को जीव
कर्त्ता नहीं, कराता नहीं
पर का अनुमोदक
भी नहीं,
चैतन्य तो चैतन्य में
परिणत होता है,
अचैतन्य-अचैतन्य में
वस्तु स्वतंत्रता
ऐसी ही है,अन्य नहीं
अन्यथा नहीं।

आत्मगुरु

अहो हंसात्मन्!
शब्द ज्ञान भिन्न है
आत्मज्ञान भिन्न,
शब्दज्ञान बाहर है
आत्मज्ञान
भीतर का ज्ञान,
शब्द ज्ञान परार्थ है
आत्म ज्ञान स्वार्थ
पहिचान शब्दज्ञान देवे,
बाह्यी गुरु
आत्मज्ञान न दे सके
आत्मगुरु ही
परमार्थ से है
सच्चा गुरु,
जो जाने
स्व के पलपल
क्षण क्षण को।

सामान्य विशेष

अहो प्रज्ञ!
सत् सामान्य है जहाँ
वहाँ मात्र
सत् ही सत्
एकान्त नहीं,
सत् सामान्य में
पर्याय विशेष
भी होती है,
प्रतिक्षण क्रमभावी
पर्यायों का परिणमन
चलता है सत्
सामान्य में
सहभावी गुणों के साथ,
यह वस्तु का
सहज स्वभाव।

आत्म स्वभाव

अहो प्रज्ञ!
आत्मा है चैतन्य स्वभावी
नहीं जड़भावी
सांख्य/सौगतवत्,
ज्ञान दर्शन गुण से मंडित
स्व में ही
चित् प्रकाशी,
स्वपर प्रकाशक
गुण–गुणी में है अविनाभावी
नहीं गुण–गुणी
भिन्न युतसिद्ध
वैशेषिकवत्
है द्रव्य नित्यानित्य भावी
नहीं एकान्त से नित्य
सांख्यवत,
नहीं अनित्य
सुगतवत्।

शील से स्वर्ग

अहो ज्ञानी!
साधु पुरुष है वही
जिसका शील
पवित्र है,
शीलविहीन नर तिर्यञ्चवत्,
शील में व्रत है, शील में
तप है, शील है
सर्व विद्या सर्व साधना
स्वर्ग मोक्ष
शील ही देता,
प्राण का त्याग
कर देना,
पर अपने सद्शील को
नष्ट नहीं
होने देना।

आत्मविशुद्धि

अहो ज्ञानी!
मत कर पर की निन्दा,
आलोचना स्व के भावों की
कर परीक्षा, स्व परिणामों की
दशा पर कर विचार,
मेरा कैसा है आचार-विचार,
यदि कर लिया विचार
तो पर निन्दा से विमुख हो
स्व-निन्दा में लग जाएगा,
आत्मालोचन ही
आत्म विशुद्धि का
है साधन।

ज्ञानी

अहो हंसात्मन्!
ज्ञानी वे ही जन हैं
जो देह के
नष्ट होने के पूर्व
निज के अंदर से
विकारों को
पृथक् कर देते हैं
काम क्रोध मान माया
लोभ को जीते जी
जीत ले
वे ही
सच्चे साधु ज्ञानी हैं।

परम कला

अहो प्रज्ञ!
विशुद्ध भाव
भवातीत होने की
परम कला है,
भावों की अशुद्धि ही
भवभ्रमण का मूल कारण है।
साधु पुरुष,
इसलिए होते हैं महान्,
ये विषमताओं में भी
समता का जीवन
जीना जानते हैं
कषायों के निमित्तों पर
अपने उपादान को ही
सँभालते हैं।

माध्यस्थ

अहो हंसात्मन्!
तु पर का कर्त्ता नहीं,
पर कर्त्तापन को
कराने वाला भी नहीं,
तु पर कर्त्तापन का
अनुमोदक भी नहीं,
न तु प्रायोजक है
तेरे से भिन्न जो है
उनका तु प्रायोजक भी नहीं,

तेरे कुछ नहीं करने पर भी
उनमें परिणमन
होता है, इसलिए
तु जगत् से
माध्यस्थ हो जा।

वस्तु स्वतंत्रता

अहो हंसात्मन्!
लोक से भिन्न
निज लोक का
अवलोकन कर
निज लोक में नहीं
अन्य किसी का कुछ भी,
व्यर्थ का कर्त्तापन
स्व द्रव्य स्वतंत्र था,
स्वतंत्र है
स्वतंत्र ही रहेगा
भविष्य में,
पराधीनता का जीवन
दु:खमय जीवन
स्वतंत्र जीवन ही है
परमानंद का
जीवन।

पर चिंता धमाधमा

अहो विज्ञात्मन्!
उत्तम चिन्ता
निज शुद्धात्मा की जान,
देह चिन्ता करने वाले
मध्यम पहिचान,
वे नर अधम हैं
जो काम-भोग की चिंता में
लीन हैं,
अधमों में अधम
उन्हें जानो
जो पर की चिन्ता में
लीन हैं
ऐसे नर
कभी नहीं पाते शान्ति
आनंद की अनुभूति।

निद्रा

अहो हंसात्मन्!
निद्रा है
महा पिशाचिन,
जीते-जीते जीव को
मुर्दा बना देती है
विवेक बोध-शून्य
करा देती है,
शुभाशुभ का भान
होने देती नहीं
क्रूर-से-क्रूर
कराने में समर्थ है
ये निद्रा
इस पर कर विजय
यदि होना चाहता है
अजर अमर।

मूढ़ता

अहो हंसात्मन्!
जगत् अविद्या के
अभ्यास से मूढ़ है,
जो कि पर भावों में
आत्मबुद्धि लगा रहा,
ध्रुवधाम आत्म-सुख का
सत्यार्थ ज्ञाता चिद्ब्रह्म को
मात्र जान रहा
नहीं देखता निज भाव
देह मन वाणी में फिर
कहाँ दृष्टि निजभूत
पर देह वाणी मन में।

बन्ध प्रक्रिया

अहो प्रज्ञ!
वस्तुधर्म की
समीचीनता को जान,
गतिमान कर्मबन्ध की
प्रक्रिया पर विचार कर
सुख-दुःख का कर्त्ता-भोक्ता
जीव स्वयं ही है,
यदि कर्ता कर्म अज्ञान से
तो सद्‌बोध से उन्हें
नष्ट किया जाता,
ज्ञान-ज्ञान से कर रहा
कर्म जीव तो
कर्म के वज्रलेप को
प्राप्त होता है।

व्रत–महिमा

अहो ज्ञानी!
सम्यक् उपदेश को
हृदय में धारण करो,
सद्–गृहस्थ धर्म श्रेष्ठ है
मुनि धर्म से
भ्रष्ट होने की अपेक्षा,
सद्गृहस्थ जीता है
जीवन अपना
देव–धर्म–गुरु की
भक्ति पूर्वक
निष्कलंक यदि
धारण किया
महापुरुषों के व्रतों को,

तो महान् ही
होना चाहिए,
चर्या की मृदुलता
जिनशासन में
अनुमत नहीं।

धृति–महिमा

अहो हंसात्मन्!
सुख–दु:ख
ज्ञानाभ्यास का
सम्यक् काल है
इसमें क्लेश एवं तोष करना
उचित नहीं,
सुख के दिनों की अपेक्षा
दु:ख के दिन अधिक
संवेदन शील होते हैं,
दु:ख के दिनों में
बोध एवं बोधी की
उपलब्धि शीघ्र होती है,

प्रज्ञ पुरुष!
आत्मावलोकन करते हैं
निज की धृति को
सँभाल कर
कीर्ति को सहज
प्राप्त होते हैं।

अवलोकन

अहो हंसात्मन्!
कर स्व का अवलोकन
धृति क्षमा अहिंसा
ब्रह्मभाव पर टिका है
बन्ध मोक्ष का प्रासाद,
धृति क्षमा अहिंसा
ब्रह्मचर्य का जहाँ है अभाव
वहाँ है बंधभाव
संसार/भ्रमण।
जहाँ पर है
उनका स्वभाव
वहाँ है
मोक्ष सुख अनंतभूत,
जहाँ है पूर्ण
संसार भ्रमण का अंत।

कारण कार्य-भाव

अहो हंसात्मन्!
जगत् में
अणु-अणु स्वतंत्र है,
एक में भिन्न द्रव्य का न
कर्त्तापन है,
नहीं कारणपना,
उपादानभाव है
प्रत्येक द्रव्य का परिणमन
स्वतंत्र है, व्यवहार से
निमित्त नैमित्तिक संबंध है
प्रत्येक स्व में ही
कारण कार्य भाव से
युक्त है।

द्रव्य स्वभाव

अहो प्रज्ञ!
धुव सत्ता को जान
जो है स्वयं में परिणाम
परिणाम परिणामी में रहता है
सर्वकाल गुणों के साथ
नहीं कोई कर्त्ता
न कोई हर्त्ता द्रव्य स्वभाव का
होता है स्वयं ही परिणाम,
अज्ञ! परम सत्य जाने बिना
व्यर्थ में होता है हैरान,
जबकि द्रव्य है
स्वयं में
स्वयं स्वाधीन।

भवितव्यता

अहो हंसात्मन्!
अज्ञ प्राणी यत्नपूर्वक
करता है पाप,
विषयों के निमित्त
स्वपर विवेक
बोध शून्य होकर
मोह अन्धकार के तम में
पड़कर दीर्घ संसार में
भ्रमण कर रहा,
श्री गुरु समझा रहे
फिर भी भोला प्राणी
पापाचार के गर्त में

जा रहा,
क्या कहे अब
विचारे की भवितव्यता
ही ऐसी है।

परम शरण

अहो विज्ञात्मन्!
स्वात्मा पंच परमगुरु
ये ही है शरण, लोक में
नहीं अन्य कोई तेरा शरण
अशरणों में नहीं खोज तु
किसी की शरण,
कर रहे भ्रमण
स्वयं दुःखलोक में,
वे क्या होंगे
अन्य को सुखभूत शरण,

छद्मजनों ने छललिया
कहकर मैं हूँ
जगत् की शरण,
परमार्थ से देख
कण-कण
है स्वतंत्र।

परमाणु

अहो हंसात्मन्!
पुद्गल की शुद्ध दशा
है परमाणु,
जो प्रकट होती
भेद से संघात भेद से,
स्कन्ध होते हैं उत्पन्न
स्नेह रूखापन
दोनों के संयोग से
परमाणु दो अणुकादि
स्कन्ध अवस्था को
होते हैं प्राप्त,
नहीं कोई पुरुष
परमात्मा अणु का कर्त्ता
न स्कन्ध का,
वस्तु व्यवस्था
पूर्ण स्वतंत्र है।

सम्यक्त्व गुण

अहो हंसात्मन्!
सम्यक्त्व गुण महान्
जीवन में, सम्यक्त्व साध
सम्यक्त्व को जिसने साध लिया
वह भगवान् हो लिया
सुख बोध व्रत तप सब
सम्यक्त्व बिना
पाषाण का भार जान
सम्यक्त्व के साथ
संपूर्ण व्रत तप श्रुत
मणितुल्य जान,
प्रतिक्षण प्रतिपल
निज समकित की
रक्षा कर।

वस्तुधर्म

अहो हंसात्मन्!
परभावों में
निजभाव का
अभाव है,
निज भाव में
परभाव का अभाव है, परंतु
वस्तु का अभाव नहीं
स्व स्वभाव में
प्रत्येक वस्तु का
सद्भाव है
किसी भी वस्तु का
स्व चतुष्टय का
नहीं अभाव है,
यही वस्तु धर्म
भूतार्थ है।

पुण्योदय

अहो हंसात्मन्!
संसार उत्तीर्णता का
महापोत जिनधर्म है,
जिनशासन में
जन्म पाना ही
प्रबल पुण्योदय है
फिर तो जिनदीक्षा की
प्राप्ति का क्या कहना?
सुर-असुर से दुर्लभ
जिन दीक्षा का
धारण करना है,
महापुरुषत्व को
प्रदान कराने वाली है
जिनदीक्षा,
महापुरुष जिसे
धारण करे
वह महाव्रत है।

चारित्र

अहो हंसात्मन्!
संयमाचरण को प्राप्त कर
स्वरूपाचरण का
पुरुषार्थ कर
परम यथाख्यात के लिए,
बिना संयमाचरण
शेष चारित्र होते नहीं,
चारित्र धारण किए बिना
भगवत्ता प्रकट
होती नहीं,

निज में
निज के भगवान् के
करना है दर्शन
तो धारण करो
संयमाचरण।

सुख-दुःख

अहो हंसात्मन्!
कर्त्तापन का भाव
दे रहा जीव को सुख दुःख
वस्तु की भूतार्थ व्यवस्था
को न जान कर
अज्ञ प्राणी क्लेश को
प्राप्त हो रहा,
प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु का
परिणमन स्वपरिणमन में
हो रहा,
जीव अपने
सुख-दुःख का अनुभवन
स्व पुण्य-पाप से कर रहे
तु क्यों व्यर्थ में
कर्त्तापन ला रहा?

कर्म/कर्मफल चेतना

अहो हंसात्मन्!
स्व प्रज्ञा का कर
सम्यक् प्रयोग,
कर्म–कर्मफल चेतना
के भोक्ता
पंच स्थावरों को तो देखो,
कुछ भी नहीं कर पा रहे,
शीतगर्मी वर्षा में हिल भी न पाते
सारे कर्म विपाक को
भोग रहे,
उस कर्मफल
चेतना के हैं भोक्ता,
प्राणों से अतिक्रान्त
परमेश्वर शुद्धज्ञान चेतना
के ही हैं मात्र भोक्ता
प्रत्येक समय
निज शुद्ध चेतना पर
लक्ष्य ले जाओ।

ज्ञान यज्ञ

अहो प्रज्ञ!
परम ज्ञान ही
परमसार है
शेष सब निःसार,
कोटि-कोटि यज्ञ करो
पशु हिंसा का ही पाप है,
आत्मज्ञान परमब्रह्म
ज्ञान में लीन है जो
वह पाता ध्रुवधाम है
ज्ञान यज्ञ ही श्रेष्ठ यज्ञ है,

परम शान्ति सुख का दाता
दुःख क्लेश से मुक्ति दाता
सब यज्ञों का परित्याग
कर ज्ञान यज्ञ का अनुराग।

भेद विज्ञान

अहो हंसात्मन्!
काम-अनल में
झुलस रहा अज्ञ प्राणी,
दर-दर की ठोकर
खा खा कर
पापों की पृथ्वी पर
गिर रहे,
भेद-विज्ञान की
शीतल पयस की
बूँदों से कामाग्नि को
कर शान्त, नहीं तो
चारित्र उद्यान जल जाएगा,

फिर नहीं पा सकेगा
मधुर अमरफल
मोक्ष का।

वर्तमान ही भूत

अहो हंसात्मन्!
प्रातः जो चिड़ियाँ
डाल-डाल पर चैचहा रहीं,
वे शाम को मिलें-न-मिलें
क्षण मात्र में पर्याय परिणमन
कर जाती है,
जीवन का वर्तमान,
द्वितीय क्षण में
भूत में बदल जाता है

वर्तमान भूत बने
इसके पूर्व स्व की भूल सुधार
तु वर्धमान बन जाएगा
फिर संसार में नहीं भटकेगा।

भगवान्

अहो प्रज्ञ!
निज वैभव को पहिचान
तु स्वयं में है
भगवान्
तेरे में नहीं स्पर्श
रस रूप गन्ध का भान,
तु तो है
स्वयं में भगवान्
अनंत गुणों की, तु है खान
इसलिए स्वयं
है तु भगवान्,

राग-द्वेष मोह का
नहीं चिद्ब्रह्म में
कोई स्थान,
चैतन्य का तो है
ये चैतन्यधाम और
अन्य कोई भी नहीं थान।

परमात्म प्रभु

अहो हंसात्मन्!
स्व के प्रभु को देख,
जो है परम
वीतरागी सहजानन्द बिहारी
नहीं जिनमें राग-द्वेष
वे हैं जित रागी जित द्वेषी
नहीं है किसी से शत्रुता मित्रता
वे तो हैं मध्यस्थ स्वभावी
न है जिनमें क्लेश खेद।
अहो! अहो! अहो!
वे तो परमत्यागी
ऐसे परमात्म प्रभु के
श्री चरणों में
धोक हमारी।

सहज भाव

अहो हंसात्मन्!
परमधर्म माध्यस्थ
भाव नहीं
राग नहीं
द्वेष नहीं
क्लेश नहीं
एक मात्र है
परम सहज भाव,
कर्म निरपेक्ष आत्मा
है परम शुद्ध
शुद्ध नय से नहीं
आत्मा में द्रव्य कर्म

भावकर्म नोकर्म,
आत्मा तो है
पूर्ण कर्मातीत।
जैसा है परम ब्रह्म
सिद्ध शिला पर,
वैसा ही देव है
देह देवालय में
आत्म देव।

विपाकोदय

अहो प्रज्ञ!
लोक अनेक लीलाओं
से युक्त है,
कोई ज्ञ कोई अज्ञ,
कोई धनिक कोई निर्धनी,
यह वैसम्य नहीं
परकृत, परमात्मा कृत,
अपितु स्वकर्म सापेक्ष है।
जैसा किया है कर्म,
जीव ने पूर्व में
वैसा ही
विपाकोदय आता है,
अन्य किसी का
कोई दोष नहीं।

विश्व विजेता

अहो हंसात्मन्!
जगत् जीते जीत नहीं
मन जीते तो जीत,
विश्व में भ्रमित
निज अंत:करण
जो जीत लेते हैं
वे ही हैं विश्वजीत,
मन इन्द्रिय पर
नहीं नियंत्रण जिसका,
वह कायर पुरुष
नहीं होता कभी विश्वजीत,

विश्वविजयी पर के तन का
रक्त बहाने वाले नहीं,
वे तो हिंसक ही हैं,
स्वकषायों को
जीतने वाला ही
विश्वजीत।

अवज्ञा

अहो हंसात्मन्!
अति परिचय में है
अवज्ञा
यह नीति
लोक प्रसिद्ध है,
फिर भी अज्ञ पर में
परिचय क्यों बढ़ा रहा?
नव में होती प्रीति
इस सत्य को मृषा कह रहा
रागद्वेष से परिचय
जीव का अनादि से
फिर भी उनमें प्रीति
कर रहा

सम्यक्त्व गुण से
है अपरिचय,
फिर भी
अप्रीति क्यों कर रहा?

आकिंचन्य

अहो हंसात्मन्!
परिग्रह में
मत आसक्त हो,
परिग्रह नहीं देता शांति व आनंद
जगत् शत्रुता,
संबंधों में अप्रीति,
प्रत्यक्ष फल परिग्रह का
भविष्य में दुर्गति,
साधुजनों के ग्रह में भी
नहीं आती संपदा
बिना पापकर्म मायाचारी के,
स्वच्छ निर्मल नीर से नदियाँ
पूर्ण नहीं होतीं,
अकिंच्य धर्म को
स्वीकारो,
यदि भववारिधी
से होना है उत्तीर्ण।

पवित्र चरित्र

अहो हंसात्मन्!
स्व पर उपकार की
दृष्टि है
तो स्व दिनचर्या
निर्मल होनी चाहिए,
पर भी स्वचर्या से ही
निज का उपकार कर पायेंगे
नियत आहार-बिहार
निहार होता है जिसका
उसका शरीर स्वस्थ
रहता है,

जिसका शरीर स्वस्थ है
उसका चित्त भी
स्वस्थ होता है
चित्त की
स्वस्थता से ही
चारित्र पवित्र होता है।

सत्ता

अहो विज्ञात्मन्!
नहीं विश्व एक
किसी सत्ता पर,
एक सत्ता के अनुसार
होगा लोक परिणमन तो
वस्तु व्यवस्था ही
बिगड़ जाएगी, सर्वलोक
एकरूप हो जाएगा,
प्रत्येक द्रव्य का परिणमन
एक ही समय में हो रहा
भिन्न-भिन्न,

सत्य को पहिचानो
सत्ता सर्व पदार्थ गत
विश्वरूप जानो,
लोक अनेक
सत्तावान जानो
अणु-अणु स्वाधीन है
इस ध्रुव सत्य को
पहिचानो।

वस्तु निर्णय

अहो विज्ञात्मन्!
तत्त्वबोध गहन है
अल्पश्रुत अध्ययन का
विषय नहीं,
अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग
की है आवश्यकता
शब्द ब्रह्म से आत्मब्रह्म को
जानने के लिए,
जैसी वस्तु
देख रहा जीव वैसी ही नहीं

अल्पज्ञान से वस्तु का
पूर्ण निर्णय होता नहीं,
केवल्य ज्ञान में सम्पूर्ण
विश्व का होता है
पूर्ण बोध।

राग का संबंध

अहो हंसात्मन्!
जगत् में नहीं
कोई किसी का,
सब संबंध राग के जान,
राग हटा संबंध मिटा,
प्रत्येक द्रव्य की
स्वतंत्र सत्ता को जान,
क्यों पर में हो रहा
तू परेशान,
पुण्य का है उदय
जब–तक
सब कहते
मेरा–मेरा
पुण्यक्षीण पर नहीं
गुरु व चेला।

सद् दृष्टि

अहो हंसात्मन्!
भूतार्थ तत्त्व का
तु कर चिन्तवन,
सम्यक् चिन्तवन ही
तुझे कराएगा तत्त्व निर्णय,
तत्त्व निर्णय के लिए चाहिए
अनेकांत दृष्टि,
वे ही हैं सच्चे
सम्यक् दृष्टि
स्व पर बोध प्रदायिनी
दृष्टि का नाम है सद्दृष्टि,

बाह्य नेत्रों का विकार
ब्रह्म लोक का अवलोकन
करने में है बाधक,
पर अंतरंग नेत्र
आत्मविवेक का
विकार तत्त्वनिर्णय
का करता अभाव।

अहिंसा

अहो हंसात्मन्!
सर्वपापों में प्रधान है हिंसा
सर्वधर्मों में
मुख्य धर्म है अहिंसा,
नर्क तिर्यंचादि
दुर्गति का कारण है हिंसा,
स्वर्ग मोक्ष का सोपान है अहिंसा
परम ब्रह्म जगत् में है कोई,
तो वह है अहिंसा,
सर्व कल्याणीभूत
शीलस्वभाव है अहिंसा,
महा-महा यज्ञ है कोई,
तो उसका नाम है
अहिंसा।

मूर्च्छा

अहो विज्ञात्मन्!
घोर कष्टदायिनी है
जगत् में कोई
तो वह है मूर्च्छा,
दर-दर की ठोकरें
दिलाने वाली है मूर्च्छा,
विश्व का भिखारी
बनाने वाली है मूर्च्छा,
विश्व में ममत्व बढ़ाने
वाली है मूर्च्छा
जहाँ-जहाँ है मूर्च्छा
वहाँ-वहाँ है परिग्रह,
लिप्तता में लिप्त
पुरुष नहीं बनता
परम पुरुष।

नीति

अहो हंसात्मन्!

सम्यक् नीति का जीवन

सफल जीवन,

सम्यक् सुनीति का प्रयोग

जो कर लेता है

वह समय पर स्व पर की रक्षा

कर लेता है सुनीति बोध-विहीन

सम्राट् स्वपर का

क्षय कर लेता है,

समय पर जो करले

सम्यक् विचारपूर्ण कार्य,

वही बनकर

चिरकाल रहता है

सम्राट्।

निजप्रवेश

अहो प्रज्ञात्मन्!
वसुधा पर शान्ती
का जीवन है उनका
जिनके पास है संतोष,
तृष्णा की अग्नि जब-तक
जलती है तब-तक
न शान्ती न सुख,
परम समरसी भाव का
आनंद है वहाँ,
जहाँ मात्र ज्ञायक भाव है शेष,
आशा की पांश का कर छेद,
निज ध्रुव में
कर प्रवेश।

दैव और पुरुषार्थ

अहो हंसात्मन्!
आशा की दासता
महाकष्ट प्रद है,
वस्तु की उपलब्धि
आशा से नहीं
दैव और पुरुषार्थ के
नियोग से होती है,
जहाँ न दैव न पुरुषार्थ
वहाँ विचारो
मात्र आशा क्या करेगी?

प्रज्ञावन्त जीव
आशा का त्याग कर
सम्यक् पुरुषार्थ करते हैं,
सफलता दैव के
नियोग पर है।

भव भ्रमण

अहो विज्ञात्मन्!
भाव सँभाल
भव भ्रमण से
स्वात्मरक्षा का यदि
है भाव
कर्म तो स्वाधीन है,
भावकर्म जीव न करे
तो कर्म आत्मा में न बंधे,
द्रव्यकर्म तो स्वतंत्र है
स्व स्निग्ध रुक्ष भाव
से करते हैं परिणमन

आत्मा के स्निग्ध रुक्ष भावों के
निमित्त कर्मरूप परिणत
हो जाते हैं।

परिणाम-परिणामी

अहो हंसात्मन्!
द्रव्य की स्वतंत्रता
पर कर विचार
स्व-स्व परिणाम में
हो रहा परिणमन
प्रत्येक द्रव्य का,
अन्य द्रव्य में
अन्य द्रव्य का
परिणाम-परिणामी भाव
शून्य है, स्वचतुष्टय
में उपादान भूत

परिणमन स्वतंत्र है
अन्य द्रव्य काल आदि
बहिरंग निमित्त है,
परन्तु परिणाम
तो स्व परिणामी में
ही हो रहा है।

पुरुषार्थ

अहो विज्ञात्मन्!
जब-तक जीव को
स्व स्वतंत्रता का
बोध नहीं होगा तथा
निज योग्यता पर
विश्वास नहीं होगा,
तब-तक पुरुषार्थ किसकी
प्राप्ति का करेगा,
स्वात्मा की स्वतंत्र सत्ता का
निर्णय जब कर लेता है जीव
तभी उसका प्रकट करने का
सम्यक् पुरुषार्थ करता है,
निज पुरुषार्थ से
निजनाथ के
दर्शन कर
लेता है।

तपोधन

अहो हंसात्मन्!
वन्दनीय परम वन्दनीय
वीतराग दिगम्बर
धरती के देवता
महाश्रमण,
नहीं जिनके अन्तस्थ में
विकार भाव,
नहीं भोग भावना, अहो-निश
लगे स्वात्म रमण में,
न रखते धन-धरती
न राग है, न द्वेष है
न ओढ़ते शाल-दुशाल हैं
ऐसे रहते हैं
निमग्न निज में,
पर में पूर्ण
उपेक्षा भाव है, उनके
श्रीजी में रहता प्रतिपल
श्रद्धा भाव है।

पुण्य-महिमा

अहो ज्ञानी!
पुण्य की महिमा में
मत हो जाना मग्न,
ये नहीं है आत्मा का
शाश्वत धर्म, पुण्य-पाप
दोनों कर्म प्रकृतियाँ हैं,
पुद्गल का धर्म
कब विलीन हो जाए
नहीं तुझे ये समझ,
दिख रहे लोक में
जो आज तेरे,
वे कब हो जायेंगे पर

इस का भी कर
तु चिंतवन,
फलवान आम्रवृक्ष पर
तोते बैठते,
फल विहीन पर नहीं,
पुण्य के काल में
सब होते हैं अपने,
पुण्यक्षीण पर नहीं।

आनंद

अहो हंसात्मन्!
संसार में सर्व
सुखी वही है
जिसके विकल्प शान्त हैं,
नाना विपत्तियों से
नहीं दुःखी प्राणी
नाना विकल्पों से
दुःखी है,
विपत्तियाँ बाहर आती हैं,
बाहर ही चली जाती हैं,
विकल्प व्यक्ति के भीतर
उत्पन्न होते हैं और
भीतर ठहर जाते हैं,
विकल्पों को बाहर
कर दो
आनंद भीतर है।

मुक्ति वधु

अहो प्राणी!
प्राण कब
निकल जाए
नहीं बोध,
इतना करले तु
सम्यक् पुरुषार्थ,
प्राणों के वियोग के पूर्व,
स्व परिणामों से
कर दे वियोग
यदि तु चाहता
यथार्थ में मुक्ति वधु
का सम्यक् संयोग,
जिसका नहीं होता
कभी भी वियोग।

परम शरण

अहो प्रज्ञ!
स्थिर प्रज्ञ होकर
समझ तू भूतार्थ
बोध को, स्व प्रज्ञा
और पुण्य को सुरक्षित कर,
नहीं होगा कोई लोक में
तेरा हितेशी मित्र,
अशुभ काल में, नहीं देता
कोई अन्य शरण,
परम शरण है
यदि कोई तो
वह व्यवहार से
पंचपरमगुरु
परमार्थ से एकमात्र
निज शुद्धात्मा।

पुण्य पाप

अहो विज्ञात्मन्!

पर भाव न तेरा पुण्य

न पाप

न ही पुण्य पाप का विपाक

निज भावों से होता है पुण्य-पाप,

जिन भावों से होता है

पुण्य-पाप

उन्हीं भावों से

क्षय होगा पुण्य और पाप,

मिलता है पुण्य से स्वर्ग

पाप से नरक

पुण्य-पाप के क्षय से

न स्वर्ग न नर्क,

होता जीव पुण्यपाप

से रहित परमात्मा।

स्वात्महित

अहो प्रज्ञ!
स्व को कर तु तत्त्वोपदेश
जगत् की ऐषणाओं में
नहीं शान्ती का लेश,
स्वात्म हित को लक्ष्यकर
संघ समाज के लिए नहीं
किया धारण तूने यह
दिगम्बर भेष,
स्वात्म देव के मिलन
हेतु स्वीकार है
परम दिगम्बर भेष,
यही है परम हितकारी
स्वोपदेश!

सच्चा मित्र

अहो विज्ञात्मन्!
संपदा के काल में
जैसा करता है व्यवहार
वैसा ही विपदा के काल में
करे सद्व्यवहार
उसे ही तू अपना
मित्र जान,
विपदा के समय जो
पीठ दिखाए
ऐसे स्वार्थी को कभी

अपना मित्र नहीं मान
संकट काल में
बिना बुलाए आए
उसे ही सच्चा
मित्र जान।

वस्तु अनेकान्तभूत

अहो हंसात्मन्!

वस्तु एक ही

काल में सत् है

असत् है,

स्वचतुष्टय में सत् है

परचतुष्टय में असत् है

विधिरूप निषेधरूप है

सामान्य है विशेष है

वृक्षवत्।

वृक्षत्व-वृक्षत्व सामान्य है

आम्र कदली नीम्र

पर्याय विशेष है

वस्तु अनेकान्त भूत है।

अलिङ्ग भाव

अहो प्रज्ञ!
भूतार्थता को जान
नाना रस रूपता
गंध स्पर्श
नहीं है
शुद्धात्मा में, इसलिए
आत्मा अमूर्त है
बंध अपेक्षा मूर्त्त है
निर्बन्ध स्वभाव है
त्रैकालिक स्वभाव,
अलिङ्ग भाव ही है
निज ज्ञायक का भाव,
निज ज्ञान
तू मात्र देख
निज ज्ञायक को।

सम्यक्-उपदेश

अहो प्रज्ञ!
सम्यक् तत्त्वबोध सम्यक् दृष्टि
को है पथ्यबोध
एकान्त से दूषित,
स्याद्वाद शून्य जनों के
सम्यक् बोध लगता है
अपथ्यकारी,
वस्तु गौणता-मुख्यता
से पूर्ण है,
ऐसा दिया सदोपदेश
श्री जिनेन्द्र ने,
जिन उपदेश ही
है सम्यक्-उपदेश
इसे सँभालो भव्यो
यही है
कल्याण उपदेश!

परम ब्रह्म

अहो हंसात्मन्!
परम ब्रह्म को जान
उसे ही पहिचान
उसे ही मान,
वह न उत्पन्न होता है
न मरण को ही
प्राप्त होता है,
वह अजन्मा
अहेतुक है,
न कार्य है
न कारण है,
वह मात्र
चैतन्य पिण्ड
ज्ञान घन
ज्ञायक ही है।

परम स्वभाव

अहो प्रज्ञ!

नहीं आत्मा रसवान्

न गंधवान्, वर्णातीत

अव्यक्त अरूपी है

अलिङ्ग स्वभावी है,

वह तो ज्ञाता है

ज्ञाता थी

ज्ञाता ही रहेगी,

ज्ञायक भाव ही

आत्मा का

परम स्वभावी है,

अन्य भाव नहीं ध्रुव

ज्ञाता का भाव।

दुःख का मूल

अहो हंसात्मन्!

भव-भव में भ्रमण

चल रहा जीव का

पल-पल में दुख भोगता

मानसिक शारीरिक वाचनिक

दुःख के कारण को देख

आत्मा में दुःख का मूल

कारण कर्म बन्ध,

कर्मोदय के कारण जीव

भव-भव में भ्रमण कर रहा,

कर्म नष्ट हो जाए,

जीव के तो

भव भ्रमण का

अभाव हो जाएगा।

सरल-कठिन

अहो प्रज्ञ!
पर्वतारोहण सरल है
सरल चाँद सितारों
की गणना,
सरल समझो
सागर की बूँदों का गिनना,
पर नहीं सरल स्व के
परिणाम सँभाल कर
प्रतिक्षण रखना,
कर पुरुषार्थ सम्यक्
मेरू मर्यादा तोड़ दे,
पर मन मेरू
पाप पंक में
न जाए।

प्रमाद/प्रमदा

अहो हंसात्मन्!

प्रमाद,

प्रमदा तुल्यजान

दोनों ही विवेक हीन कर

नर को नारकीय बना देते हैं,

न प्रमाद में

विवेक रहता है

न प्रमदा में,

चाहिए आत्मसुख तो

दोनों त्याग कर,

उभय लोक में

महा कष्ट दायक है

प्रमाद और प्रमदा।

आत्मसिद्धि

अहो हंसात्मन्!
आत्मसिद्धि चाहिए तो
त्याग दे प्रसिद्धि की भावना,
लोक प्रसिद्धि नहीं मिलती
आकांक्षा से, वह भी
यशः कीर्ति पुण्य प्रकृति
के उदय से ही प्राप्त
होती है, उसके लिए
आकांक्षा आकिंचित्कर है,

आत्मसिद्धि के लिए
कर निर्मल रत्नत्रय की
सम्यक् साधना
लोक प्रसिद्धि की मत
रख कामना।

आत्मा

अहो हंसात्मन्!

जो नहीं इन्द्रिय ग्राहक,

वह है अतीन्द्रिय

ज्ञायक अलिङ्ग स्वभावी आत्मा,

नहीं इन्द्रियों का प्रमेय

स्वज्ञाता का है ज्ञेय,

स्वप्रमाता का ही है प्रमेय

वह प्रमाण स्वभावी अलिङ्गी है,

आत्मा जिसका नहीं,

भिन्न कोई चिन्ह

इसलिए है

अलिङ्ग धर्मी आत्मा।

भूत वर्तमान भविष्य

अहो हंसात्मन्!

भूत वर्तमान नहीं

वर्तमान भूत नहीं

वर्तमान भविष्य नहीं

भविष्य में वर्तमान नहीं

भूत–भूत है

वर्तमान वर्तमान है,

भविष्य भविष्य है,

भूत मृत है

भविष्य अजन्मा है

वर्तमान

मात्र विद्यमान है।

जन्म मरण

अहो विज्ञात्मन्!
अज्ञ बन रहा कर्त्ता
पर के जन्म-मरण का,
मैं जिलाता, मैं मारता
व्यर्थ का कर रहा दंभ,
जन्म-मरण
नहीं किसी का कर्म,
आयु कर्म के संयोग से
मिलता है जन्म,
आयुकर्म के वियोग से
होता है मरण
पर में न किसी का
जन्म न मरण।

साधु पुरुष

अहो प्रज्ञ!
लाभ पर लोभ न हो,
ऐसा निष्पृह जीवन
जिसका है
वही विश्व हृदय पटल पर
साधु पुरुष कहलाता,
जहाँ लोभ है
वहाँ
पाचों ही पाप हैं,
पापी पुरुष
साधु पुरुष कैसे कहलाता?
साधु बनने के पूर्व
लोभ कषाय के त्यागी बनो।

भद्र पुण्य

अहो प्रज्ञ!
उद्यमशील
पुण्यवान के घर
वैभव स्वयं आजाता,
घर–घर जाना
पुण्यहीन का कार्य है,
पुण्यवान
पर घर नहीं जाता,
स्वगृह पर
विश्व खड़ा हो जाता
विश्वख्याती की चाह में
मत कोई कार्य करो,
प्रशस्त भद्र पुण्य का
संचय करो,
शेष सब पुण्य की
बलिहारी है।

परमात्मा

अहो हंसात्मन्!

जानो उस परमात्मा को

जो मात्र ज्ञायक है,

कारण नहीं,

जो कारक बनता है

वह परमात्मा नहीं,

कारक राग ही

अज्ञ कर सकता है,

परंतु अणु-अणु स्वतंत्र है

स्व स्वभाव रूप ही

परिणत होते हैं

उनका अन्य कोई

कर्त्ता नहीं।

उपादान उपादेय भाव

अहो हंसात्मन्!
सर्वज्ञ सर्वदर्शी
परमात्मा विश्वज्ञाता
विश्व दृष्टा है,
कारक नहीं,
प्रत्येक द्रव्य
स्व परिणाम
परिणमन कर रहा,
पर द्रव्य
पर द्रव्य के
उपादान नहीं,
उपादान–उपादेय भाव
स्वचतुष्टय में ही है,
अन्य द्रव्य नहीं,
अन्य किसी का उपादान है
मात्र सहायक
निमित्त ही है।

अज्ञ प्राणी

अहो हंसात्मन्!
अज्ञ प्राणी काम भोग
की तृष्णा में,
दिन निकाल देता,
धन अर्जन में,
रात्रि निकाली सोते में
ऐसा करते-करते
जीवन नष्ट कर लिया,
पर नहीं पा सका उसे
जिसे पाना चहता था,
वह तो वहाँ ही है
जहाँ भोगों से
उदासता है,
वह है क्या?
आत्म-शान्ति।

तपवृद्धि

अहो हंसात्मन्!

परम धर्म उपशम भाव,
नहीं है जिसके पास
उपशम भाव
नहीं है किंचित् भी
धर्म भाव
उपशम भाव तथा
तप की वृद्धि
पर होती है
कर्म निर्जरा की वृद्धि,
दीर्घ तप साधना की
नहीं है यदि सामर्थ

तो उपशम भाव में ही
लग जाओ,
उपशम भाव के
नियोग से
तप वृद्धि होती है
तप वृद्धि से
आत्मसिद्धि
निश्चित ही होती है।

निमित्तों में दोष नहीं

अहो प्रज्ञ!
पर निमित्तों पर
क्यों कर रहा विकल्प?
एक ही वस्तु बन रही
भिन्न-भिन्न निमित्त,
पुत्र के लिए दुलार
पति के लिए विकार
स्त्री है मात्र एक,
ज्ञानी जन निमित्तों
को नहीं देते दोष
क्षण क्षण में सँभालते हैं
स्व उपादान को।

आत्मा का स्वभाव

अहो विज्ञात्मन्!
धर्म ही है शरण
जन्म से मरण तक
मरण से जन्म तक
शेष सब बदल जायेंगे
पर्याय के परिणमन पर,
किंतु नहीं बदलेगा
स्वात्म धर्म
कोटी-कोटी भव में भी,
क्योंकि
धर्म तो
आत्मा का स्वभाव है,
स्वभाव कभी भी
स्वभाव से
पृथक् होता नहीं।

कर्म शत्रु

अहो प्रज्ञ!
निजात्मा की
स्वतंत्रता पर विचार कर,
अनादि काल से कर्म शत्रु
परतंत्र किए हैं,
अज्ञ प्राणी
शत्रुओं का ही साथ दे रहा
अहो आश्चर्य?
शरीर मन वाणी में
सब कर्म का ही
परिवर्तन नोकर्म है,
राग मोह से इन
शत्रुओं को क्यों
कर रहे पुष्ट
शत्रु तो शत्रु
ही होता।

सहवास

अहो प्रज्ञ!
कुल शील स्वभावी के
साथ करना सहवास,
कुल-शील हीन के साथ
नहीं करना जीवन में
सहवास व विश्वास,
काक का हंस के साथ
नहीं होता सहवास,
कुलशील हीन के
अंदर नहीं होता
लोकापवाद का
आभास।

परम-सत्य

अहो प्रज्ञ!
नीर क्षीर को कर दे
जो पृथक-पृथक
वही है हंस,
मोह-राग-द्वेष से
निज को कर ले
भिन्न वह है
परम हंस,
नहीं परभावों में
किंचित् भी आत्मभाव
जो समझ रहा
इस परम सत्य को
वही है साधु भाव।

श्रुताराधना

अहो हंसात्मन्!

नित्य कर श्रुताराधना,

पल प्रमाण ही नहीं

समय प्रमाण काल भी

मत कर नष्ट

व्यर्थ में,

श्रुत संवेग भाव

कराता है

असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग में

लीनता ही है

मुमुक्षु की प्रथम पहिचान

श्रुतभक्ति बनाती है

भविष्य में केवली

भगवान।

शरण

अहो प्रज्ञ!

परम कल्याण प्रद

मार्ग रत्नत्रय धर्म है

जिसने रत्नत्रय को

स्वीकार लिया

वह भवसागर से पार हुआ,

पर जिसने की

रत्नत्रय धर्म की

किञ्चित् भी विराधना,

उसने

भव–भव में भ्रमण

किया,

मत कर

विराधना निजधर्म की

निजधर्म ही है

शरण भव भ्रमण में।

तत्त्वविचार

अहो प्रज्ञ!
न्याय नीति प्रेम
सम्यक् आचरण
व्यक्ति के व्यक्तित्व
को वर्धमान करता है,
लक्ष्मी गृह आँगन में
करती है वहाँ निवास
जहाँ है सम्यक् सदाचार
सद्-विचार,
अनाचारी अन्यायी
के घर
नहीं रहती
श्री व स्त्री,
स्वीकार तु
सम्यक् तत्त्वविचार,
जो चाहे तु
सम्यक् आचार।

विकारी-भिखारी

अहो प्रज्ञ!
विकारी जीवन ही
बन जाता है भिखारी जीवन,
जब-तक नहीं मन में
कोई विकार,
तब-तक
नहीं फैलाना पड़ते
किसी के चरणों में हाथ,
पर द्वार पर नहीं है यदि
भटकने के भाव,
तो शीघ्र करो
परभावों में
निजत्व का अभाव।

अलिङ्ग स्वभावी

अहो हंसात्मन्!
ज्ञायक को जान
ज्ञायक को पहिचान
ज्ञायक तो ज्ञायक ही है
ज्ञायक में ज्ञेय नहीं
जड़ ज्ञेयों में ज्ञायक नहीं
ज्ञायक अन्य लिङ्गों से
जाना जाता नहीं
ज्ञायक तो है
सबसे भिन्न,
अलिंङ्ग स्वभावी है,
ज्ञायक में न ही
अनुमान है,
न पर ज्ञेय भाव,
ज्ञायक है
शुद्ध स्वभाव।

बंध/मोक्ष

अहो हंसात्मन्!

राग युक्त भाव

भव बन्ध के कारण हैं,

पदार्थ नहीं किसी के

बन्ध कारण,

वस्तु तो

स्ववस्तुत्व गुण में लीन है,

वह न किसी के

बंध का कारण

न मोक्ष का,

वह तो, जो है सो है

राग रहित भाव

मोक्ष के कारण,

राग का

कर तु अन्त,

तु स्वयं है

निज भगवन्त।

धर्म-धर्मी व अभिन्न

अहो हंसात्मन्!
नहीं राग-द्वेष
क्रोधादि कषाय
चैतन्य लक्षण है
ये आत्मा के त्रैकालिक
धर्म नहीं,
जिनका होता विनाश है
नहीं चैतन्य का धर्म
जो धर्म होता है
वह धर्मी से
अभिन्न होता है
अयुत सिद्ध होता है
धर्मी धर्मवान के
होता है।

चैतन्य

अहो हंसात्मन्!

चैतन्य में जड़ संयोग नहीं,

जड़ का चैतन्य में

कोई संबंध नहीं,

परमार्थ से दोनों का

परिणमन होता है,

स्व स्वभाव से

चैतन्य तो है

उपयोगमयी,

उपयोग पराश्रयभूत नहीं

उपयोग तो उपयोगवान

आत्मा के ही आश्रय,

अन्य जड़ द्रव्यों के

आश्रय से उपयोग

उत्पन्न होता

नहीं।

धर्मधार

अहो प्रज्ञ!
सत्यार्थ धर्ममार्ग
का आश्रय कर,
धर्म नदीतट सरोवरों में
पर्वत व वृक्षों में
उत्पन्न होता नहीं,
धर्म तो धर्मात्मा के
अंदर ही होता है,
जो धर्मात्मा को माने नहीं
धर्मात्मा की रक्षा के
भाव रखे नहीं, तो
धर्मात्मा कैसे?

धन्य-धन्य-धन्य
महाश्रमण
विष्णुकुमार
सात शतक
मुनियों की रक्षा में
क्षणमात्र विलम्ब
किया नहीं।

श्रुतसाधना

अहो हंसात्मन्!

कर सम्यक् श्रुताराधना

आत्मसाधना के

साधन के लिए,

विनय विवेक भक्ति के साथ,

नहीं करना

श्रुताभ्यास

अहंकार ममकार

की वृद्धि के लिए,

विनय पूर्वक की गई

श्रुतसाधना,

श्रुतकेवली

व केवली स्वरूप

शीघ्र होती है फलित।

पुण्यहीन

अहो प्रज्ञ!
यश पुण्य कीर्तन
को कर पाते सुरक्षित
पुण्यवान जान,
पुण्यहीन का यश
होता नहीं,
कदाचित कुचित
यश कार्य भी करे,
फिर भी
यश को प्राप्त
कर पाता नहीं,
कुलीनजन अपयश से
रहते प्रतिक्षण भीत
अकुलीन को
लोकापवाद का
भय होता नहीं।

पुण्याश्रित

अहो प्रज्ञ!
पुण्य की सत्ता में
असत्य भी
सत्य हो जाता है,
पुण्यक्षीण का
सत्य भी
मृषा कहलाता है
मत हार-जीत पर
विचार करो
पुण्य वृद्धि का
पवित्र कार्य करो,
संसार का
संपूर्ण सुख
पुण्य के
आश्रय जान।

निजत्व

अहो प्रज्ञ!
पर भावों में
निज भाव का
कर अभाव,
पर भावों में निजत्व नहीं
तु चैतन्य धाम है,
जड़ अचेतन्य
द्रव्यों में
निज का कहाँ स्थान,
जब पर भाव
निज स्वभाव
कभी होंगे नहीं,
फिर क्यों करता
व्यर्थ का राग।

अभिन्न

अहो प्रज्ञ!
ज्ञान ज्ञायक का
धर्म है,
ज्ञायक से भिन्न
ज्ञान नहीं
ज्ञानहीन ज्ञायक नहीं,
पर से ज्ञान नहीं
पर के द्वारा
हरा जाता नहीं,
त्रैकालिक ज्ञाता
ज्ञान गुण सम्पन्न है,
अन्य नहीं
अन्यथा नहीं है।

दुर्लभता

अहो हंसात्मन्!
दुर्लभ है प्रज्ञावान होना,
प्रज्ञा प्राप्त कर
प्रज्ञा का सम्यक्
प्रयोग करना
महादुर्लभ जान
हेय उपादेय बुद्धि की
प्राप्ति ही कठिन है,
बुद्धि प्राप्त कर
सुर दुर्लभ रत्नत्रय
धर्म का धारण करना
सामान्यजनों का
नहीं यह काम,
महापुरुष प्रज्ञा
से करते हैं
महाकाम।

शून्य स्वभाव

अहो हंसात्मन्!

आत्म द्रव्य की

त्रैकालिक सत्ता को

पहिचान,

जिसमें नहीं राग

वह है निरुपराग

स्वभावी निज भगवान्-आत्मा,

सर्व कर्म बन्धनों से

शून्य स्वभावी शुद्धात्मा,

कर्म नहीं करपाते

स्पर्श

इस अस्पर्श स्वभावी

आत्मा को।

मंत्रराज

अहो विज्ञ!
नहीं अणु से
लघु कोई अन्य,
नहीं आकाश से
महान् कोई अन्य,
सर्व कर्म–हर्त्ता
शर्म–कर्त्ता महामंत्र,
अपराजित मंत्रराज नमस्कार
णमोकार मंत्र से
महान् अन्य कोई
विश्व में मंत्रराज नहीं,
भजो सब उसी
महामंत्र को,
अघ हरो
सब निज के।

स्वपरिणमन

अहो प्रज्ञ!
प्रत्येक द्रव्य का
स्व परिणाम स्वतंत्र ही है,
उपादान दृष्टि से
अन्य-द्रव्य अन्य-द्रव्य का
परिणाम परिणामी भाव नहीं,
अज्ञ प्राणी क्यों व्यर्थ में
क्लेश को प्राप्त हो रहा?
मैं कर्त्ता मैं कर्त्ता कहकर
अपनी अज्ञानता को
जगत् में प्रकट कर रहा,
जबकि द्रव्य का
परिणमण स्वतंत्र
ही हो रहा।

बाह्य विभूति

अहो प्रज्ञ!
मत करो मद
बाह्य वैभव का,
ये नहीं है शाश्वत
त्रैकालिक ध्रुव,
बाह्य विभूति
पुण्याश्रित है
पुण्य सुकृत के
आश्रित है,
अहंकार
न पुण्योदय है
न पुण्यकृत,
मद में रावण
जैसे नष्ट हो गए,
फिर सामान्य
की क्या बात
है?

ध्रुव स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
स्वाश्रय में रहना सीख,
पराश्रय भाव
नहीं तेरा
ध्रुव स्वभाव
एक अखण्ड
ज्ञायकभाव ही तेरा
सत्यार्थ ध्रुव-स्वभाव
ध्रुव के आश्रय से ही
तु पायेगा अचल
अनुपम ध्रुव सिद्ध भाव,
जहाँ नहीं जगत् का
किंचित् भी
क्लेश भाव
वह है
परम स्वभाव।

अलिङ्ग ग्रहण

अहो हंसात्मन्!
तेरे में नहीं
पर चिह्न,
तु तो पर लांक्षनों से
है भिन्न,
गति इन्द्रियादि
मार्गणा तेरा
ध्रुव लांक्षन नहीं,
गुणस्थान नहीं तेरी
शाश्वत पहिचान,
वर्ण गन्ध
रस स्पर्श भी
जीव का लक्षण नहीं,

तु जो है वही है
अलिङ्ग ग्रहण
तेरा स्वभाव।

राग-आग

अहो प्रज्ञ!
स्व परिणामों की
रक्षा कर,
पर भावों के राग से,
राग नहीं देगा
आत्मशान्ति,
क्षण-क्षण करेगा घात
तेरी आत्मशान्ति का,
एक क्षण की
राग पर्याय
पल-पल में
जलाती है,
उस पीड़ा को
स्वयं जाने जीव
या जाने स्वयंभू।

तपाराधना

अहो हंसात्मन्!

दुर्लभ है लोक में

नर देह की प्राप्ति

नर देह से ही

होता तप है,

नर देह में

त्याग बिना, तप के

कर्मक्षय नहीं,

कर्मक्षय के बिना

मोक्ष नहीं,

मुक्ति कन्या के

वरण की है यदि

कामना

तो करो

सम्यक् तपाराधना।

एकान्तवास

अहो प्रज्ञ!
आत्मोन्नति का
स्थान एकान्त वास,
पर के विकल्पों से
सुरक्षित जीवन एकान्तवास,
पापाचार से रहित प्रवृत्ति
एकान्तवास,
चित्त की चंचलता का
नाशक एकांतवास
आलोकिक चर्या का पथ
एकान्तवास,
आत्मब्रह्म में लीन
कराने वाला
एकान्त वास,
गूढ़विद्या का
उद्घाटक
एकान्तवास।

श्रेय-प्रेय

अहो प्रज्ञ!
श्रेय को देख
प्रेय को छोड़,
भव दु:खों से
चाहिए मुक्ति तो,
प्रेय प्रिय
अवश्य है,
परफल
किंपाकफलवत है
मधुर है,
पर मरण का
कारण है,
श्रेय पुरुषार्थ साध्य है
पर पुरुष को परमात्मा
बना देता है।

उपदेश दक्षता

अहो प्रज्ञ!
ज्ञान प्राप्त करना
दुर्लभ है,
पुण्य एवं पुरुषार्थ
साध्य है,
पुण्य एवं पुरुषार्थ से
ज्ञानार्जित भी हो जाए,
स्वज्ञान से
पर को उपदेश की दक्षता
और अधिक दुर्लभ है,
निर्भीक वक्ता
लोक में कठिन है,
सत्यार्थ
तत्त्वोपदेश
निर्भीक निर्लोभी वक्ता ही
कर सकता है
लोभी नहीं।

महाकला

अहो हंसात्मन्!
कुशल प्रवक्ता
बनना भी
है एक कला,
फिर जिनोपदेश करना
यथावत महाकला है,
संपूर्ण कलाएँ वहाँ
विलीन हो जाती हैं
जहाँ पवित्र चारित्र
स्वानुभूति से संपन्न हो,
चारित्र की निर्दोषता
पूज्य ही नहीं,
परमात्मा बना
देती है।

साधना

अहो हंसात्मन्!
तन को सँभालना
नहीं कठिन,
कठिन मन को सँभालना है
तन का त्याग पूजा तो
करा सकता है, परन्तु
पूज्य नहीं बना सकता,
पूज्य बनने की है
यदि भावना
तो मन वश करो
प्रतिक्षण स्वानुभूति का
पुरुषार्थ कर,
स्वानुभूति ही है
सर्वश्रेष्ठ साधना।

श्रेष्ठ वक्ता

अहो ज्ञानी!
प्राञ्जल भाषा में
पर को समझना
सहज हैं,
परंतु स्व के पीपल पत्रवत
चलायमान चित्त को
समझाना उतना
सहज नहीं है,
श्रेष्ठ वक्ता तभी है
आप जब स्व के
चंचल चित्त को
स्थिर प्रज्ञ कर सको
अन्यथा नहीं।

कर्मोदय जनित

अहो प्रज्ञ!
पर के कष्टों को देख
मत करो उपहास्य,
पुरुष तो पुरुष ही है
सुख-दुःख नहीं पुरुष
यह तो पुरुष का
कर्मोदय है,
कब किसके कैसा
कर्म विपाक आ जाए,
यह नहीं मालूम,
प्रबल पुण्यात्मा
के भी
सभी दिन एक से
नहीं होते।

महादुर्लभ

अहो हंसात्मन्!
सत्यार्थ का बोध
होना दुर्लभ है,
सत्यार्थ पर चलना
दुर्लभ में दुर्लभ है,
धन्य हैं वे जीव
जो सत्यार्थ
कहते ही नहीं मात्र
सत्यार्थ पर
चलते भी हैं,
उन्हीं महात्माओं से
यह धरा
धन्य हुई
जो सत्यार्थ का
जीवन जीते हैं।

उभय रत्नत्रय

अहो हंसात्मन्!
केवल्य को चाहता है
तो केवल एक मात्र
सम्यक् तत्त्व का
सम्यक् निर्णयकर,
समीचीन तत्त्व निर्णय के
अभाव में
सम्यग्दर्शन ही नहीं होता,
तो सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र
तीनों के अभाव में मित्र!
केवल्य कैसे?

केवल्य होगा तभी
जब रत्नत्रय धर्म
का पालन
निश्चय एवं व्यवहार
से होगा।

स्वात्म प्रदेश

अहो प्रज्ञ!
नहीं विश्व में कोई
स्वात्म प्रदेशों से
भिन्न प्रदेश अपना,
देह के प्रदेश भी
आत्मा से भिन्न हैं,
फिर लोक में
अन्य द्रव्यों के प्रदेश
कैसे होंगे अपने?

समझ मुमुक्षु समझ,
क्यों? भू प्रदेश के राग में
परस्पर भाई–भाई का
शत्रु बन रहा?
स्वात्म प्रदेश ही
मात्र निज
प्रदेश है।

भाषा वस्तु नहीं

अहो हंसात्मन्!
करो रक्षा आत्मधर्म की,
जड़ बुद्धि जनों ने क्या-क्या
नहीं लिख डाला,
मधुर भाषा में,
आत्म भावों को मत ले जाना
सत्यार्थ भाषा नहीं वस्तु है
वस्तु स्वरूप जाने बिना
भाषा में मत हो जाना मतवाला,
संसार गर्त में डाल दे
ऐसी है मोह मधुबाला
जो जाएगा
इस शाला में
वह पाएगा
नाली का किनारा।

धर्मवीर

अहो प्रज्ञ!
धर्मवीर बनो
मतबनो कर्मवीर
कर्मवीर बनकर
क्या कर पाओगे?
नर्क निगोद की नदियों में
गोता लगाओगे,
मगर मच्छ घड़ियाल के
शिकार ही बन जाओगे,
धर्मवीर बन गए, यदि तो
संसार समुद्र तिर जाओगे,
लेगा नाम तेरा सर्व लोक
सहस्रों वर्षों तक
इतिहास इतिहासकार दोहरायेंगे,
धर्मवीर की माला
हरपल भक्त ध्यायेंगे।

ब्रह्मधर्म

अहो हंसात्मन्!
ब्रह्मधर्म महान्
जिसके आराधन से
बनता है जीव भगवान्
कामी दर-दर में
बनता है अघवान,
नहीं ऐसी लोक में औषधी
जिससे कामी का
काम ज्वर उतरता हो,
नर्क तिर्यंच पर्याय से
बचना है तो
रे मानव!
शील सदा तू
पालनकर।

महाशत्रु

अहो विज्ञात्मन्!
लोक में जीव का नहीं
अन्य कोई शत्रु
सिंह, अजगर, अग्नि
मनुष्य, देव आदि
देंगे कष्ट
अल्प समय को,
पर क्षण-क्षण में भव-भव में
महा कष्ट प्रद है
यदि कोई वह है,
व्यक्ति का अविवेक
विवेक हीनता ही है
महाशत्रु।

ज्ञायक

अहो प्रज्ञ!
ज्ञायक ज्ञायक है
ज्ञायक ही ज्ञेय है
ज्ञायक ही ज्ञाता,
ज्ञायक से भिन्न
न अन्य निज स्वभाव का
कोई ज्ञेय है, न ज्ञाता
निजज्ञायक में नहीं
अन्य कोई लिङ्ग
न पर लिङ्गी,
ज्ञायक तो है
अलिङ्ग स्वभावी।

प्रभुता

अहो विज्ञात्मन्!
स्व 'ज्ञ' स्वभाव से लख,
पर के रस मत चख,
पर पदार्थों में
गई परिणति
दुर्गति में ले जाएगी,
अशुभ गति के भ्रमण से
है भय तो
पर परिणति से
भिन्न कर,

निज में निज को कर स्थापित
'ज्ञ' स्वभाव लीनता ही
प्रभुता को प्रकट
करायेगी।

कर्त्ताहर्त्ता

अहो हंसात्मन्!
जगति के परिणमन को
परिणमाने में,
नहीं कोई परिणाता
अज्ञ विचार करते हैं
विश्व में है कोई शक्ति
अवश्य विराट्
जो कर रही
संचालन जगत् का,
पर नहीं यह सत्य
कि जगत् का
कर्त्ता भी है कोई,
जगत् का नहीं
हर्ताकर्त्ता रक्षक
अन्य कोई,
जगत् स्व प्रतिष्ठित है
अणु-अणु स्वतंत्र है
यह जगत् सत्य है।

शिवपुर के साथी

अहो प्रज्ञ!
शिवपुर जाना है
तो साथ सखाओं को
ले जाना,
करुणा मित्र, शील सखा को
नहीं छोड़ देना,
चारित्र भैया के बिना
शिवपुर पहुँचना
दुर्लभ जानो,
गुप्ति समिति
अङ्ग रक्षकों को
कर लेना आगे

दस धर्मों की सेना
को निज
आत्मरक्षा में
लगा देना।

स्थिरचित्त

अहो प्रज्ञ!
यशकीर्ति
विज्ञता होती है
उसी के पास
जहाँ है चित्त में
स्थिरता का वास,
अस्थिर चित्त में
नहीं होता कोई भी
कार्य पूर्ण,
एक कार्य
प्रारंभ करे
उसे शीघ्र बंद कर
दूसरे में लगे,
ऐसा अस्थिर चित्त पुरुष
किसी भी कार्य को
पूर्ण जीवन में
कर नहीं पाता।

किं सुन्दरं किं असुन्दरं

अहो प्रज्ञ!
वस्तु-वस्तु है
वस्तु में न कोई
सुंदर है न असुंदर है
निज स्वभाव में
परिणमन करना
वस्तु का धर्म है,
वस्तु को देख जिसे
जिस वस्तु से होती प्रीति
वही वस्तु उसके लिए
सुंदर है,
जिस वस्तु
में होती है अप्रीति
वह उसके लिए
असुंदर है,
पर वस्तु तो
जो है सो है।

आत्मानुशासन

अहो प्रज्ञ!
आत्मानुशासन ही
विश्व का महानतम
अनुशासन है,
आत्मानुशासन के आगे
सारे अनुशासन
अनुत्तीर्ण हैं,
पर-पर अनुशासन
उसी का चलता है
जो पूर्व में स्वात्मा पर
अनुशाासन कर लेता है,
धीर-वीर-गंभीर जन
अन्य के दोष नहीं
स्वदोषों का

अवलोकन कर,
स्व को निर्दोष बनाकर
पर को
निर्दोषता का
उपदेश देते हैं।

सत्यार्थ

अहो हंसात्मन्!
व्यवहार का
अभाव मत कर, व्यवहार है
हेतु निश्चय का,
व्यवहार मुद्रा के बिना
परमार्थ धर्म प्रकट
होगा कहाँ?
यह बोध होना
अनिवार्य है,
पर व्यवहार को ही
परमार्थ मान लेना
सम्यक् बोध नहीं

परमार्थ से परमार्थ
को देखो, परमार्थ बिना
सत्यार्थ पदार्थ की
उपलब्धि नहीं।

उपेक्षाभाव

अहो हंसात्मन्!
आत्म साधक नहीं करता
जगत् से कोई भी अपेक्षा,
अपेक्षाएँ राग को करती
हैं वर्धमान,
वैराग्य अपेक्षाओं से कृष
हो जाता है
उपेक्षा भाव
आत्मबल को
बढ़ाता है,
दीनता को
नाशकर
महानता को प्रकट
कराता है,
सामायिक में लीन
रहना है तो
उपेक्षा को
प्राप्त करो।

सत्यता

अहो प्रज्ञ!
चमकते तारे गगन में
कब विलीन हो जाएँ?
मालूम नहीं,
चाँदनी तम में परिवर्तित होते
नहीं देर लगती,
प्रातः की अरुणायी,
सन्ध्या में बदलते
देर नहीं लगती
जीवन की संध्या
रात्री में बदलते
देर नहीं लगती।

साध्य सिद्धि

अहो प्रज्ञ!
चंचल चित्त में
नहीं होती किसी भी
साध्य की सिद्धि,
साध्य सिद्धि की है
भावना, तो चित्त को
करो स्थिर, स्थिरता
में होते हैं पूर्ण
संपूर्ण कार्य
आत्मसिद्धि एवं

व्यवहार कार्य सिद्धि
उभय सिद्धि के
ही लिए चाहिए
स्थिर चित्त शुद्धि।

पथिक

अहो हंसात्मन्!
चलो पथ पर
पथिक बिना चले
अभीष्ट स्थान मिलेगा नहीं,
पर चलना सँभल सँभल के,
मार्ग विशाल है,
अवरोधक भी बहुत हैं,
तु अकेला ही है
तेरे साथ
अन्य कोई नहीं,
गिर गया तो
जग हँसेगा,
सँभल गया तो
तु जग में पुजेगा
चल पथिक चल
सँभल कर चल।

क्षण भंगुर

अहो प्रज्ञ!
प्रतिक्षण
बदल रही पर्याय
क्षण भंगुर जीवन में,
क्या-क्या नहीं प्राणी
विचार कर लेता,
पर यमराज
सारे विचारों को
विचार तक ही
सीमित रहने देता
पल भर अधिक
समय नहीं देता,
जो घर सजा रहे थे
उसी के द्वारे पर
अर्थी सजने लगती है,
समय को देख,
समय पर देख
हे प्राणी!
समय जा रहा है।

चैतन्य प्राण

अहो हंसात्मन्!
जीवन के सत्य को जान,
द्रव्य प्राण अनित्य है
चैतन्य प्राण नित्य हैं,
द्रव्य प्राणों को देखेगा तो
संयोग-वियोग दिखेगा,
भाव प्राण
चैतन्य प्राणों को देखेगा
तो न संयोग
न वियोग,
वे त्रैकालिक हैं।

कार्य सिद्धि

अहो हंसात्मन्!
कामना विशाल
पुण्य न्यून
कामना से
कार्य नहीं होते,
भाग्य पुरुषार्थ से
समय पर कार्य होता है,
इच्छाओं के करने से
कार्य होते होते तो
जगति पर
प्रत्येक प्राणी
राज्य सुख ही
भोगते

दुःखियों का
वसुधा पर
हो जाता अभाव
इच्छाओं की पूर्ति
पुण्योदय पर ही
होती है।

गर्त

अहो हंसात्मन्!
इच्छाओं की
सरिता की बाढ़ में
बह रहा संसार,
नदी के पूर में
आया पुरुष
प्राण नष्ट कर लेता है,
इच्छाओं के पूर में
समता के प्राण
हर लेता,
ना बनो नादान,
मत डूबो
इच्छाओं के गर्त में।

नरश्रेष्ठ

अहो हंसात्मन्!
धन्य धन्य धरा
पर वे ही
नरश्रेष्ठ धन्य हैं,
जो बिना भोगे
भोगों को छोड़कर
चले गए हैं,
विषयी
विषय विष में
लिप्त रहे,
वैरागी वैराग्य में
मग्न रहे
उन्हीं महापुरुषों से
अवनि अमल है,

जिन्होंने कुमार
ब्रह्मचर्य व्रत पाल,
सिद्धालय में किया
गमन है।

वंदना

अहो हंसात्मन्!
धीर गुण गंभीर
निर्ग्रंथ वीतरागी,
रहते प्रतिक्षण
अंतरंग बहिरंग
तप में लीन
उन दिगम्बर श्री गुरु के
चरणों में
धोक हमारी
क्षीण किए हैं
कर्म कलंक जिन्होंने
लीन हुए हैं
आत्मधर्म में,
वे वन्दनीय
शत शत वन्दनीय
धराधाम पर
निर्ग्रन्थ तपोधन हैं।

स्वपर घाती

अहो हंसात्मन्!
कषाय भाव का
कर अभाव,
यदि चाहता है
तु संसार का अभाव,
कषाय अभाव किए बिना
नहीं होगा संसार
भ्रमण का अभाव,
कषाय की ज्वाला ने
कर दिए अनंतों भस्म,
कषायी के पास नहीं होता
कोई भी धर्म,
मूढ़/अज्ञानी
स्वपर घाती है
महापापी कषायी।

स्वर्ग-नरक

अहो हंसात्मन्!
निज भावों को
कर स्थिर,
भावों में बंध है
भावों में मोक्ष
पुण्य भावों से स्वर्ग
पाप भावों से नर्क
पातक से पतन
ध्रुव होता है,
पात की विशुद्धि
समाप्त हो जाती है,
विशुद्धि के अभाव में
मोक्षमार्ग स्वयं
नष्ट हो जाता है।

क्षमा धर्म

अहो हंसात्मन्!
बलवान ही
होता है क्षमावान,
बलहीन निर्बलों का
नहीं है ये काम
धीर-वीर ही होता गंभीर,
कषाय ज्वाला में
अज्ञानी ही जलता है,
जो आता है
स्वर्ण बनकर
वह अग्नि में चमकता है,
ईंधन बनकर आता है
वह भस्म हो जाता है,
क्षमाधर्म वीरों का है
नहीं है ये
कायरों का धर्म।

समत्व

अहो हंसात्मन्!
समत्व भाव
परम कल्याणभूत है,
समत्व भाव निर्वाणभूत है,
समत्व के अभाव में
सम्पूर्ण साधना
निष्फल है,
समत्व ही है
आगम ज्ञान
तत्त्व बोध का सार
परम उद्धार का मार्ग,
जिनशासन का
मूल आधार
समत्व भाव।

ध्यान

अहो विज्ञात्मन्!
अन्ध पुरुष को
सूर्यदर्शन,
लंगड़े को
सुमेरु आरोहण,
बधिर को संगीत श्रवण
कर विहीन को
सुपात्र दान,
गूँगे के
श्री मुख से
श्री जिन स्तवन
दुर्लभ से दुर्लभ है,
ध्यान हीन को निर्वाण प्राप्ति
महा दुर्लभ है,
निर्वाण की
उपलब्धि परम ध्यान
से ही होगी।

परम-पद

अहो हंसात्मन्!

सम्प्रति भरत क्षेत्र में

शुक्ल ध्यान का

अभाव है, परन्तु

धर्मध्यान का

नहीं है अभाव,

पंचमकाल में

भरत क्षेत्र में

धर्मध्यान कर

ब्रह्मस्वर्ग को

प्राप्तकर क्रमशः

च्युत हो

मानव देह धारण कर

उग्र-उग्र ध्यान कर

जीव पाता है

परमपद निर्वाण।

संलग्न

अहो हंसात्मन्!
आगम विहित
तत्त्व का कर
तु सदा सम्यक् विज्ञान,
सद्बोध से होता है
सम्यक् आत्मशोध
परमार्थ से देख
आत्मशोध का
साधकतम करण है
निजध्रुव आत्मध्यान
स्वात्म ध्यान ही दिलाता

मुमुक्षुओं को
साक्षात् पद निर्वाण,
निर्वाण सुंदरी से,
करना है मित्र वरण,
तो हो जा
ध्यान में
संलग्न।

विसर्जन

अहो ज्ञानी!
अहंभाव किसी का
पूज्य नहीं हुआ,
पूज्यता अहंकार में नहीं
पूज्यता और विद्या
विनय के अंदर है,
विनय के अभाव में
न विद्या न विवेक,
मात्र होता है
विचारे के
अंतरंग में क्लेश,
क्लेश मुक्ति
चाहता है प्राणी, तो
अहंकार का
कर विसर्जन।

मार्दव

अहो हंसात्मन्!

मान के वश होकर

पूज्यों से भी अज्ञ

विमुख हो जाता है,

पूज्यों की विनय

मोक्ष का द्वार है,

सहजता, मार्दव भाव

मान का अभाव

जब हृदय में

प्रवेश कर जाता

तब विनय भाव

सहज ही आ जाता है,

मान हटाओ

मार्दव प्रकटाओ।

आर्जव-धर्म

अहो हंसात्मन्!
कर्मकृत भावों में
आत्मबुद्धि का कर विसर्जन,
परभावों में
किया गया विमोह
माया भाव को
करता है उत्पन्न,
सरलता का अभाव कर
कुटिलता को
कर देता है स्थापित,
आर्जवधर्म का
घाती है मायाभाव,
चाहते हो यदि
आत्मवैभव तो
मायाचारी का
कर दो त्याग
हो जायेगा,
तेरा उद्धार।

स्वलीनता

अहो हंसात्मन्!
स्व परिणामों को
सहज कर,
समय जा रहा
काल आ रहा
पल–पल
आयु क्षीण हो रही,
तन की शक्ति भी
विलीन हो रही,
स्मरण शक्ति जा रही,
विस्मरण शक्ति आ रही,
यम स्व नियत्ता पर
ले जाएगा,

इसलिए संपूर्ण परपञ्चों से
पृथक् होकर स्व में
लीन हो जा।

स्वभाव-विभाव

अहो हंसात्मन्!
एक परम ब्रह्म ही
निज ध्रुव धाम है,
अन्य नहीं कोई
मेरा थान है,
अचल अनुपम अलेप
ही मात्र स्वभाव है,
परतंत्र भाव शून्य
निज स्वतंत्र
मेरा अधिकार,
कर्म तंत्र में रहना
नहीं मेरा
त्रैकाली स्वभाव है
वह तो
विभाव भाव है।

शुचिता

अहो हंसात्मन्!
भावों की निर्मलता
जहाँ है वहाँ शुचिता है,
गंगा, क्षीर सागर का
जल नहीं देता शुचिता को,
पानी से स्वच्छ हो सकते हैं
पानी से पवित्र नहीं हो सकते,
आत्मा की पवित्रता
आती है उत्तम
शौचधर्म से
लोक की गृद्धता,
जीवों को अधोगामी
बना देती है।

असत्

अहो प्रज्ञ!
पर में स्व का
असत् है,
असत् में
स्वसत्ता का
होता है अभाव,
अज्ञ प्राणी
अभाव में भी राग कर
कर्मास्रव कर रहे,
ज्ञानी जन विवेक बोध
सम्पन्न होकर
पर परिणमन में
स्व परिणामों को
संक्लेशित नहीं करता
अणु-अणु स्वाधीन है,
सत्ता सर्व जीवों की
सर्व पदार्थों की
स्वतंत्र है।

शौच धर्म

अहो हंसात्मन्!

लोभ ने किया

सर्व जगति को भ्रष्ट,

न रहे लोभ

न बने जीव परिग्रही,

संपूर्ण व्यापार

चल रहा लोभ के कारण,

हृदय की पवित्रता

हो रही नष्ट

लोभ के कारण,

वात्सल्य-विश्वास

कर रहा है पलायन

लोभ के कारण,

शुचिता है

वहाँ जहाँ नहीं है

लोभ।

सत्य धर्म

अहो हंसात्मन्!
वचनों में अमृत
वचनों में जहर
मुख एक भाव अनेक,
नहीं दोष वचनों में
दोष है भावों में,
अभिप्राय होता है जैसा
वचन निकलता है वैसा,
भाषा मनोहर
शास्त्रयुक्त होगी
उसी की जिसकी
परिणामों में होगी विशुद्धि,
सत्य वचन परम
रसायन है।

मित भाषी

अहो प्रज्ञ!
स्व प्रज्ञा से तु कर
सम्यक् निर्णय,
अधिक भाषण से
पूज्यता का होता है नाश,
पूज्य पुरुष होते हैं
मितभाषी,
साधु पुरुषों की
यही है प्रथम पहिचान
मित–मधुर–गंभीर भाषण
सबसे रखते हैं प्रेमभाव
पूज्य पुरुषों से
नहीं करते
कभी विसंवाद,
पूज्यों से न करें
अधिक वार्तालाप।

संयम धर्म

अहो हंसात्मन्!
नि:श्रेयस अभ्युदय
सुख का साधन है
संयमभाव,
दुर्गति से
रक्षक है संयमभाव,
सुगति का साधन
है संयमभाव,
इंद्रिय प्राणी की
प्रवृत्ति की निवृत्ति है
संयमभाव
संयम पर जो जीता है
वह विश्व की पूज्यता
को पाता है।

सच्चा मित्र

अहो हंसात्मन्!
परम मित्र
जीव का धर्म है,
दुःख में, सुख में
सदा रहता साथ है,
कष्ट उपसर्गों के
काल में भी
नहीं छोड़ता साथ,
अहर्निश रखता ध्यान
यही है
सच्चे मित्र की पहिचान,
ऐसा मित्र मिलता है
पुण्योदय से,
पुण्य हीन को नहीं।

पंथ

अहो हंसात्मन्!
जगति की
संपूर्ण विभूति
मोही को ही
लुभाती है,
जहाँ मोह का ही
त्याग है
वहाँ विभूति का
क्या स्थान?
विभूति में होगा लिप्त
तो मुक्ति श्री से
हो जाएगा रिक्त,
मुक्ति बल्लभा का
बनना है
यदि कन्त,
तो छोड़ दे जगत्,
के संपूर्ण पंथ।

तप धर्म

अहो हंसात्मन्!
संवर निर्जरा का
पवित्र कारण तपस्या है,
तप से कर्म निर्जित होते हैं
भूत के भविष्य के आने वाले
रुक जाते हैं,
स्वशक्ति से
करो तपस्या
तपने से ही
स्वर्ण कुन्दन होता है
तप से ही
जीव भगवान् बनता है।

त्याग धर्म

अहो हंसात्मन्!
त्याग किए बिना
शान्ति का वेदन
होता नहीं,
आत्म शान्ति का
जनक त्याग धर्म,
परमानंद का आनंद
ले पाता है वही
जो निर्वेद भाव से
परभावों का मोह
मोह छोड़
त्याग कर देता है,
नहीं देखता उन्हें
पुनः
मलपिण्ड तुल्य।

अकिञ्चन्य धर्म

अहो हंसात्मन्!

चिद्ब्रह्म एकत्व विभक्त

निज आत्मद्रव्य ही

परम द्रव्य है,

निज से भिन्न

लेश मात्र भी

मेरा अन्य द्रव्य

आत्मभूत नहीं,

स्वसत्ता में

स्वसत् है,

पर सत्ता में

स्व असत् है,

एकत्व से भिन्न

पर में आत्म द्रव्य

आकिञ्चन्य है,

ज्ञान-दर्शन

मात्र ही

स्व है

अन्य तो

अन्य ही है।

सहज स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
परम ब्रह्म का
कर वेदन,
विकारी भाव नहीं
चिद्‌ब्रह्म का
सहज स्वभाव,
सहज स्वभाव में
नहीं विकार भाव
आत्मा को महादुःख
दाता है विकारभाव,
अज्ञ नहीं समझता
स्वात्मा की पीड़ा को,

कषाय मद में
उन्मत्त हुआ
विकारों की होली में
झुलस रहा,
निज चैतन्य
विलास का
भान नहीं।

शील धर्म

अहो प्रज्ञ!
शील धर्म महान्
शील के प्रभाव से
बनता है जीव भगवान्,
शील के प्रभाव से
अग्नि का नीर हो गया
सर्प स्वर्णहार बन गया,
संपदा नष्ट हो
जाने देना
पर सत् शील को
नष्ट नहीं होने देना,
मृत्यु का वरण श्रेष्ठ है,
परंतु शील हरण नहीं।

महारोग

अहो हंसात्मन्!
काम रोग से पीड़ित
महारोगी,
कर देता है
सर्व वंश का नाश,
तन धन धर्म यश
का क्षय करता,
होकर निर्लज्ज
सर्वलोक जन
महापापी कहकर
उससे होते संतुष्ट
विषयाशक्त पुरुष के
न मानुष्य होता
न देवत्व,
नहीं होते उसके
सत्यवचन।

सँभाल

अहो हंसात्मन्!
निज भावों को देख
कहाँ-कहाँ चल रहा
भ्रमण उनका,
एक-एक समय की
दशा ही विचित्र है,
फिर जीवन
पर्यन्त की अवस्था
क्या होगी?
उन-उन
स्थानों पर तेरे भाव
भ्रमण कर चुके हैं,
जिनका नाम लेने में
तुझे ही लज्जा आती है,
सँभाल भावों को
तु ही भवातीत
भगवान् है।

साथी

अहो हंसात्मन्!
स्वप्रज्ञा को
स्व में जोड़,
स्व प्रज्ञा को
परज्ञेयों में नष्ट
मत कर
पर कभी भी तेरा
सम्यक् साथ देने वाले
नहीं हैं,
नियत समझ
पर नियम से तेरा
साथ छोड़ेंगे,
जो जो साथ छोड़ेंगे
वे सब ही पर हैं,

एकमात्र
निज ध्रुवधाम
चैतन्य गुण मण्डित
आत्मा ही
तेरा साथ देगा।

ज्ञेय

अहो हंसात्मन्!
पर ज्ञेय तो
ज्ञेय ही है
परमार्थ से
ज्ञेय तो ज्ञान का विषय है
विषय विषयी में
भिन्नत्व भाव है,
अभिन्नत्व भाव तो
मात्र एक स्वज्ञान ज्ञेय
में ही है,
पर तो भिन्न है
भिन्न था भिन्न ही रहेगा,
फिर भी व्यवहार से
संबंध को प्राप्त है।

स्वोपदेश

अहो हंसात्मन्!

पर उपदेश की

दक्षता से जीव

महान् नहीं बनता

स्वपर उपदेश भी

होना चाहिए,

स्वपर उपदेश में

श्रेष्ठ तो स्वोपदेश ही है,

यदि है शक्ति तो

पर उपदेश भी करो,

स्व को छोड़कर

मात्र परोपदेश में ही

नहीं लगना चाहिए,

स्व का ध्यान

अनिवार्य।

विश्वास

अहो हंसात्मन्!
स्व परिणामों पर
नहीं विश्वास,
कब बदल जाएँ
नियत नहीं
फिर तु
पर परिणामों पर
कैसे कर रहा है
विश्वास,
कब किसके भाव
कैसे हो जाएँ
नहीं बोध तुझे,
इसलिए प्रतिक्षण
स्ववृत्ति को
रख सँभाल,
नहीं संसार में
कोई किसी का सगा।

पुण्योदय

अहो हंसात्मन्!
यही है नीति
नीति-निपुण को
नहीं रखना चाहिए
विश्वास किसी का,
स्वराज्य के संचालन में
प्रतिक्षण जाग्रत
रहना चाहिए,
मित्र भी
धन जन के
लोभ में
शत्रु बन जाते हैं,
पुण्योदय पर
आवश्यकता पर
शत्रु भी मित्र
बन जाते हैं।

आत्मधर्म

अहो प्रज्ञ!
स्वात्मधर्म का कर
अन्वेषण,
जिसमें नहीं प्रेम
नहीं द्वेष,
रागद्वेष रहित
जो अवस्था है
वही चैतन्य का
स्वात्मधर्म है
जो-जो हेतु रागद्वेष
उत्पन्न कराए
सब आत्मधर्म शून्य
अधर्म जान,
एक मात्र
चैतन्य में
चैतन्य की रमणता
का भाव ही
आत्मधर्म है।

अहिंसा धर्म

अहो हंसात्मन्!
जहाँ अहिंसा है
वहाँ ही धर्म है,
हिंसा में धर्म नहीं
हिंसक कोई भी
धर्मात्मा नहीं,
पर प्राणों के हर्त्ता
धर्मात्मा कैसे?
जो सम्प्रति में
एक जीव को कष्ट
प्रदान करे, वह
भविष्य में भी
अन्य किसी को
सुखदायक हो भी
कैसे सकता
है?

श्रेष्ठ धर्म

अहो हंसात्मन्!
नहीं धर्म मात्र
भूखे रहने में,
नहीं धर्म मात्र
नंगे रहने में
धर्म नहीं
मात्र पैदल चलने में,
धर्म नहीं मात्र
जंगल में रहने में
धर्म के मर्म
जाने बिना,
अज्ञ धर्म में लग गए,
धर्म का
स्वरूप तो समता
परिणामों में है,
समत्व भाव ही
श्रेष्ठ धर्म है
भिन्न नहीं
अन्यथा नहीं।

परम आराध्य

अहो प्रज्ञ!
श्रमण की श्रमणता है
परम पूज्य परम आराध्य,
जहाँ है कंचन काँच में
साम्यभाव, शत्रु मित्र में है
एकत्व भाव, लाभ-अलाभ
में साम्यभाव
वहाँ ही है
श्रमणत्व भाव,
अन्य वृत्ति गौण है,
साम्यवृत्ति
प्रधान है,
समता से
श्रेष्ठ नहीं लोक में
कोई अन्य साधना।

क्षणभंगुरता

अहो हंसात्मन्!
जीवन की
श्वाँस श्वाँस पर
रख दृष्टि,
कब श्वाँस रुक जायेगी
संपूर्ण जगत् की लीला
क्षण मात्र में
विनश जायेगी,
न होगा कोई सगा
स्वयं अकेला ही जायेगा,

न साथ
तेरे कोई भी
शत्रु व मित्र जायेगा
जो दृष्टि गोचर
हो रहा है
वह सब
यहाँ ही
पड़ा रह जाएगा।

अज्ञता

अहो हंसात्मन्!
अवनी के हर तल पर
तूने किया है
जन्म–मरण,
नहीं ऐसा
कोई भी प्रदेश
जहाँ पर न हुई तेरी
मृत्यु न हुआ हो जन्म,
फिर भी
अज्ञ प्राणी
भूप्रदेश के कारण
कर रहे परस्पर
वात्सल्य भाव का
खण्डन,
मत करो कषाय
एक प्रदेश भी तु
साथ नहीं ले जाएगा,
सब यहाँ पर ही
रह जायेगा।

ज्ञायक

अहो हंसात्मन्!
ज्ञायक को देख
तु परम ज्ञान
स्वभावी है
तेरे में
अन्य द्रव्य का
प्रवेश नहीं
तु तो मात्र
ज्ञायक है
ज्ञायक था
ज्ञायक ही रहेगा,
निज ज्ञायक से भिन्न
अन्य और कुछ
नहीं जानना देखना ही
धर्म तेरा है।

निज भगवान्

अहो हंसात्मन्!
तेरा भगवन्
तेरे में है,
तु पर में
खोज रहा,
क्या मूढ़ता है तेरी,
क्या स्व का सत् भी
पर में प्राप्त होता है,

पर का सत् निज में नहीं
निज का सत् पर में नहीं
तो निज भगवान् पर में कैसे?
निज भगवान् तो निज में ही है।

स्वयंभू

अहो हंसात्मन्!
ध्रुव धाम पर रख
तु ध्यान,
तेरे से भिन्न में
तेरा नहीं
कोई भी स्थान,
एक मात्र ध्रुव ही
ध्रुव में तेरा है थान,
तु स्वयं में
स्वयं का है
परमार्थ से भगवान्,
नहीं कोई भेद तुझ में
और सिद्धों में
वे हैं प्रकट परमात्मा,
तु है शक्ति रूप
अप्रकट सिद्ध भगवान्।

स्वच्छता

अहो हंसात्मन्!
आत्मद्रव्य है एक
अखण्ड स्फटिक मणिवत,
नाना वर्णों के
पुष्पों के कारण
स्फटिक नाना रूप
दिखती है,
निमित्त नैमित्तिक
भाव से पुष्पों के कारण
मणी अनेक रूप है,
परन्तु स्वभाव से देखा
जाये तो स्फटिक
स्व स्वभाव में स्वच्छ है,
आत्मा कर्म बंध दृष्टि से
नानारूप है
स्वस्वभाव में
स्वच्छ है।

सँभाल

अहो हंसात्मन्!
जगति पर अनेक
होकर चले गए,
पर कुछ भी
लेकर नहीं गए,
पर्याय प्राप्त कर
परिणाम जैसे करे
वैसे ही चले गए
जिन्होंने स्वपरिणमन
सँभाल लिए वे
निर्ग्रंथ बन
अरिहंत सिद्ध हो गए।
नहीं सँभाल पाए
स्व परिणामों को,
वे नर्क निगोद में
चले गए।

स्वधर्म

अहो हंसात्मन्!
वस्तु में
न बन्ध न मोक्ष,
वस्तु तो वस्तु स्वधर्म से
युक्त है,
पर धर्मों से मुक्त है,
पुण्य व पाप
बंध का प्रत्यय
नहीं अन्य कोई वस्तु है,
अज्ञ स्व कर्म बन्ध को
पर कृत देख रहा,
जबकि पर में स्वबन्ध
कोई कारण नहीं,
बन्ध तो होता है
स्वराग व द्वेष से।

रागातीत

अहो हंसात्मन्!
साकार निराकार
स्वभावी है आत्मा,
जिस दृष्टि से
देखता है ये आत्मा
वैसा ही होता है,
बन्ध-पर-पदार्थों में नहीं,
बन्ध तो निज भावों में,
शुभभावों से
होता है शुभबन्ध,
अशुभ भावों से
होता है अशुभ बन्ध
बन्धातीत होना है तो
रागद्वेष मोहभावों का
कर दे आत्मा से
अभाव।

ध्रुवसत्य

अहो प्रज्ञ!
जल थल नभ में
सर्वत्र देख,
तेरा सत्
कहाँ पर है?
इन सब में
तेरा सत् है क्या?
तु तो
इन सबसे भिन्न ही है,
निजभावों का
पर भावों में
सर्वत्र अभाव है,
एक मात्र
स्वभाव में ही
निजभाव का सत् है,
यही ध्रुव सत्य है।

आगम

अहो हंसात्मन्!
आगम बोध
परमानंद का स्थान है,
जहाँ नहीं
किञ्चित् मात्र भी
क्लेश का भान है,
निज भगवानात्मा का
रहता प्रतिक्षण ध्यान है,
शुद्ध-बुद्ध परम वीतरागता
का देता आगम ज्ञान है,
एक मात्र अखण्ड ध्रुवधाम
पर रखता ध्यान है,
ऐसे परम पावन
आगम को
शत-शत बार
प्रणाम है।

परमब्रह्म

अहो हंसात्मन्!
विश्व शान्ति का
दिव्य नाँद अहिंसा
परमब्रह्म धर्म महान्,
छोड़ो जगति के
सर्व विकल्पों को
एक मात्र रहे
प्रतिक्षण अधरों पर
नाँद परम ब्रह्म
अहिंसा धर्म महान्,
नहीं बताए किसी ने
इस भूतल पर
तेरे अंदर के गुण महान्,
नहीं है आगम में वर्णित
अहिंसा परमब्रह्म से महान्,
स्वीकार विंध्याचल से
सम्मेदाचल।

याचना

अहो प्रज्ञ!
सद् ज्ञान चारित्र के
अनुष्ठापक यतिगण
कहलाते हैं महान्,
सर्वजगत् का
करते हैं
वे कल्याण,
परकल्याण कारक
पूज्य यतिवर
तब-तक ही हैं
जगति पर महान्
नहीं माँगते
किसी से भी दान,

याचना
व्यक्ति की प्रभुता को
शीघ्र ही
बना देती है
लघु।

रसपान

अहो हंसात्मन्!
सद्बोध-वृत्ति, आस्था
जय का संयोग
सिद्धि का है साधन,
सद्बोध के अभाव में
आस्था व वृत्ति
अन्धकार युक्त जान,
प्रकाश के अभाव में
कक्ष के रत्नों का
बोध होता नहीं,
ज्ञान के अभाव में
चारित्र और आस्था को
जाना जाता नहीं,
सम्यक् तो यही जान
सद्ज्ञान का
कर रसपान।

सम्यक् श्रद्धान

अहो विज्ञात्मन्!
एक मात्र तत्त्व निर्णय
हो गया सम्यक् तो संपूर्ण
मार्ग-मोक्ष का
हो गया प्रशस्त,
तत्त्वज्ञान ही प्रमाण है,
जो तत्त्वज्ञान विहीन है
उसे नहीं हेय उपादेय
का ज्ञान
हेय उपादेय के ज्ञान से
होता है सम्यक् श्रद्धान
वही निर्मल चारित्र से
युक्त हो पहुँचता है
शिवथान।

चिद्‍ब्रह्म

अहो हंसात्मन्!
धुव ज्ञायक ही
एक नाम है,
अन्य नहीं कोई
निज ध्रुव आत्मा का
कोई नाम है,
एक मात्र एकत्व ही
इसकी पहिचान है,
नहीं अन्य कोई
ध्रुव ज्ञाता की
कोई पहिचान है,
चिद्‍ब्रह्म भाव ही
इसका स्वभाव है,
अन्य नहीं कोई
स्वभाव है।

क्षणभंगुरता

अहो विज्ञात्मन्!
हरित वृक्ष पर बैठीं चिड़ियाँ
प्रेम आँख से
शुभ्र गगन को निहार रहीं,
क्षण में छाए बादल
शुभ्रता विलीन हो गई
पल भर में क्या हो जाए
नहीं ज्ञान तुझे,
नहीं आए बादल
यम के जब-तक
तब-तक
चिड़ियाँ कर लें
अपना काम सारे।

महानता

अहो हंसात्मन्!
भारत वसुन्धरा धन्य है
जिसके अंक में विचरते
दिगम्बर निर्ग्रन्थ श्रमण
जिनवर के लघु नंदन
मुनिवर हैं,
श्रमण शून्य धरा
ऊषर भूमि है,
क्योंकि चारित्र की फसल
वहाँ होती नहीं
जहाँ श्रमणों का
विचरण नहीं है
देश वही विकास शील है
जहाँ का चारित्र
पवित्र है
चारित्र हीनों से
देश नहीं बनता है,
महान् चारित्र से
होता है
देश महान्।

अन्वेषण

अहो हंसात्मन्!
जगत् अन्वेषण में
जा रहा,
जाता है वहाँ
जहाँ असत्य जीवन
चल रहा
असत्य में
सत्य मिलेगा कैसे?
यह तो विचार करना चाहिए
सर्वज्ञज्ञान के अभाव में
पूर्ण सत्य
मिलता नहीं,

सत्य स्वरूप
समझे बिना
कैवल्य प्रकट होता नहीं,
सत्य का अन्वेषण
सत्यार्थ दृष्टि कर
तटस्थ होकर।

स्वधर्म

अहो हंसात्मन्!

अज्ञ प्राणी धर्म की

खोज कर रहे हैं

तीर्थों मंदिरों में

सरिता सागरों

वनों–उपवनों में,

पर नहीं बोध विचार

अबोधों को,

निज वस्तु

पर में मिलेगी कहाँ?

चैतन्य का धर्म तो

चैतन्य में ही है

वह अन्य

जड़ द्रव्यों में नहीं,

स्वधर्म को

स्व के ही

अक्ष में

देख।

आत्मज्ञान

अहो हंसात्मन्!
ज्ञाता के गुण को
ज्ञाता जाने,
जड़ ज्ञेय नहीं,
चैतन्य ज्ञेय भी
अन्य ज्ञाता के गुणों को
बहिर् भाव से
ही जानता है,
अंतरंग भाव से तो
स्वयं के ज्ञान से
स्वज्ञाता को जानता है,
अन्य ज्ञान भी
आत्मज्ञानी के लिए
आत्मज्ञान से
भिन्न ही है।

रहस्य

अहो प्रज्ञ!
नेत्रों में है अमृत
वात्सल्य दृष्टि है तो,
नयनों में टपकता
अंतरंग का रहस्य,
आँखों में उतर आता है
आत्मा का भाव
जैसी होती
भीतर की दृष्टि
वैसी हो जाती है
आँखों की दृष्टि,
भावों में है
कषाय वासना
रागद्वेष की भावना,
कुभावों से युक्त है भाव
तब आँखों से
निकलता है
जहर।

साधु स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
समता भाव ही
साधु का स्वभाव है
वही साधु जीवन का
अमृतपान है,
साधुता की
प्रथम पहिचान
समता परिणाम,
समता भावी प्राणी का
जिनशासन में
साधु नाम है,
जहाँ नहीं
समता भाव
वहाँ नहीं
किञ्चित् भी
साधु स्वभाव है।

यशवान

अहो हंसात्मन्!
जन्म महान् है उनका
जिनका विद्वानों में भी
है सम्मान,
सम्मान हीन
अपमान का जीवन है
नर्क वेदना समान,
यदि प्रज्ञावान हो तो
सर्व करना रक्षा
स्व के सम्मान की,
सम्मान सुरक्षित रहता है
उनका जिनकी चर्या
है महान्,
चारित्रवान ही
होता है
श्रेष्ठ यशवान।

विश्वास

अहो हंसात्मन्!
लोक में स्व की
कोई वस्तु रखना
चाहता है सुरक्षित, तो
वह है विश्वास,
सर्वस्य छोड़ देना
जगति पर जगत् को,
पर नहीं देना किसी
को विश्वास घात,
वे जीव मृत्यु के
बाद भी जीते हैं
जिन्होंने सबका
विश्वास जीत लिया हो,
विश्वास घात से
बड़ा नहीं कोई
जगत् में
पाप है।

सिद्धि

अहो प्रज्ञात्मन्!
क्षणिक चित्त में नहीं
होती कोई सिद्धि,
चाहिए लौकिक
पारमार्थिक सिद्धि
तो स्थिर प्रज्ञता को
प्राप्त कर,
अचल चित्त में ही
प्राप्त होती है
सर्वसिद्धि,
जो रहे अचल-अकंप
मेरुवत वे ही हुए
सिद्ध जिनेश्वर,
नहीं रहे चित्त
पुण्य व पाप में
रहे चित्त मात्र
निजात्मा में।

परमात्मा

अहो हंसात्मन्!
पर वस्तु के हरण
के चल रहे अविराम
परिणाम, क्या कोई
पर वस्तु के हरण से
बन सकता है परमात्मा,
पर वस्तु के हरण से नहीं
बनता परमात्मा
पर वस्तु को हरण कर
बनता है पापात्मा,
नहीं वह जिनेश्वर
वह तो बनता
नर्केश्वर।

शुद्धबोध

अहो हंसात्मन्!
पर्यायों में अज्ञानी की
धर्मभूत मान्यता,
वह है घोर अज्ञानता
द्रव्य का परिणमन
चल रहा त्रैकालिक
स्व स्वभाव में,
वही है पर्याय,
यह तो चलता ही रहेगा
इसमें क्या है
विशेषता?

असमानजातीय
पर्यायों से स्व द्रव्य को
भिन्न करले जीव
यही है तेरी
सम्यक् विशेषता,
त्रैकालिक शुद्धता को जान
उसे ही पहिचान
उसी का ही कर ध्यान ...।

निर्मलता

अहो हंसात्मन्!
वस्तु व्यवस्था की
नियत्ता पर विचार कर,
पर परिणामों के निमित्त से
स्व परिणामों की निर्मलता को
क्यों नष्ट कर रहा?
जब जीव के कषाय अंश
मंद होते हैं
तभी उसे
समझ आती है,
कषाय की तीव्रता में
तीर्थंकर प्रभु की
देशना भी मरीचवत
समझ में नहीं आती।

चिति शक्ति

अहो हंसात्मन्!
चिति शक्ति का
कर ध्यान,
तु है मात्र
चैतन्य भगवान्,
तेरे में नहीं
किञ्चित् मात्र भी
पर भावों का नाम निशान,
एक अखण्ड
चितिशक्ति का तु है
शुद्ध पिण्ड भगवान्
कषाय राग-मोह का
नहीं तेरे
शुद्ध स्वभाव में
कोई स्थान
तु ही तो भविष्य का
परम पारिणामिक
भाव संपन्न
सिद्धभगवान्।

विभाव स्वभाव

अहो प्रज्ञ!
वस्तु तत्त्व को समझ
मत कर हर्ष
मत कर विषाद,
सुख-दुःख
राग द्वेष मोह क्लेश
ये तो है संसार का
विभाव स्वभाव,
काँटों में
काँटेपन को ही
क्यों देखें,
काँटों के अंदर भी
विलोप देखें

काँटा चुभन ही नहीं
काँटा काँटे को भी
निकालता है
काँटों के मध्य
पुष्प भी खिलते हैं
उपसर्गों के मध्य
केवल भी
प्रकट होता
देखा जाता है।

संयोग-वियोग

अहो प्रज्ञ!
नाश में नाश ही
दिखेगा तो वियोग को
प्राप्त होकर विलखेगा,
वियोग में संयोग देख
नाश में उत्पाद भी देख
नाश के उपरान्त ही
होता है उत्पाद,
जो जो उत्पत्तियाँ हैं
वे सब नाश पूर्वक ही
होती हैं

पूर्व पर्याय का
नाश ही
वर्तमान पर्याय का
उत्पाद है
वर्तमान पर्याय का
नाश ही
भविष्य पर्याय का
उत्पाद होगा।

बन्ध विधान

अहो हंसात्मन्!
बन्ध विधान जाने बिना
निर्बन्धता की
सिद्धि का पुरुषार्थ नहीं
निर्बन्धता का पुरुषार्थ किए बिना
निर्बन्ध कोई होता नहीं,
श्री सिद्धान्तों का भी
कर पारायण
जिससे खुले मोह की ग्रन्थी,
महान् आगमों पर
कर विचार
जिनमें निहित है
रहस्य परम,
श्री धवल जी, जय धवल जी
महाधवल जी (महाबन्ध)
अनुपम ग्रन्थराज हैं
वर्णित परम
सिद्धांत महान्।

सम्यग्-दर्शन

अहो हंसात्मन्!
सम्यक् तत्त्व का निर्णय,
तत्त्व निर्णय से ही
होता है सम्यग्दर्शन,
सम्यग्दर्शन की सत्ता में
ज्ञान चारित्र में आता है
सम्यक् पन,
मोक्ष प्रासाद का है
प्रथम सोपान सम्यग्दर्शन
एक पल भी
जीवन का नहीं निकले
सम्यक्त्व के अभाव में,
पल-पल भव-भव में
प्राप्त हो जीव को
सम्यग्दर्शन।

ध्रुवसत्य

अहो प्रज्ञ!
स्वपुण्य पापोदय पर
कर चिन्तवन,
पर के
सुख-दुःखों को देखकर
मत कर व्यर्थ का आक्रन्दन
अणु-अणु स्वाधीन है
इस परम तत्त्व पर
प्रतिक्षण ध्यान कर,
पर के
सुख-दुःख देखकर
मत कर हर्ष-विषाद
जगत् को देख
जान ही
सकता है।

पुरुषार्थ

अहो हंसात्मन्!
निर्भीकता उन्नति का
प्रथम कारण,
भयवीत कुछ नया
करने की समर्थता
नहीं रखता,
नया किए बिना
विकास नहीं,
सफलता–असफलता
पुण्य पुण्योदय पर छोड़,
जो करता है
पवित्र पुरुषार्थ

उन्नति रहती है
उसके पास,
जो क्षण–क्षण में
होता है भयवीत
संकट उसके रहते
हैं नजदीक।

उत्कर्ष

अहो हंसात्मन्!
जीवन में महापुरुषों से
सीखना विसमताओं में
समता का पाठ,
उन्नति शील
नहीं डरता, तभी संकटों में
विकास होता है
काँटों में उपसर्गों में ही
उत्कर्ष देखा जाता है,
वीर की
यही है वीरता
धीर की
यही है धीरता,
जो कष्टों में
प्रसन्नता को
स्वमुख मण्डल से
दूर न होने दे।

स्वाधीन

अहो हंसात्मन्!
अपना जीवन
स्वयं ही
बनाओ महान्,
स्वजीवन
नहीं है पर के हाथ,
न ईश्वर के, न परमात्मा के
अणु-अणु है स्वाधीन,
न करता कोई किसी को
प्रभु व दीन,
जीव होता है,
स्वकर्मों से प्रभु व दीन,
प्रत्येक जीव का
परिणमन है
पूर्ण स्वाधीन।

विवेक

अहो हंसात्मन्!
निज विवेक का
कर प्रयोग,
विवेकशील ही
करता है आत्म विकास,
विवेक बिना है
जीवन में विनाश, सर्वस्य जीवन
हो जाए विलीन,
पर विवेक रहे
सर्वथा स्वाधीन,
विश्व में
परम मित्र है जीवका,
तो वह है
स्वविवेक
शत्रु है अविवेक।

शृंगार

अहो हंसात्मन्!
प्रज्ञ पुरुष होते हैं
परम उदार,
नहीं करते
परसे कभी
दुर्व्यवहार,
रखते स्व चारित्र
प्रतिपल सँभार,
उदारता गंभीरता
सहिष्णुता है
उनके जीवन का
शृंगार,
न अति प्रसन्नता
न खिन्नता
मध्यस्थता का
व्यवहार,
लोक नीति रीति
रखते हैं
सम्यक् व्यवहार।

पशुवत

अहो हंसात्मन्!
जगति में भ्रान्त
प्राणियों को देखो
जिन्हें तत्त्व का
ज्ञान नहीं सत्यार्थ,
आत्मस्वभाव का
भान नहीं,
पशुवत
जीवन जी रहे,
सोना जागना
भोजन करना
धन अर्जन करना
मात्र उनका कार्य,
अहो आश्चर्य!
तिर्यंच तुल्य जीकर,
मरण को प्राप्त
हो रहे
ऐसे जीव भी
असंख्यात हैं।

शरण

अहो हंसात्मन्!
स्व जन्म धन्य कर
रत्नत्रय की सम्यक्
आराधना कर,
नहीं अन्य कोई होगा
शरणभूत
एक मात्र है शरण
तो रत्नत्रय धर्म है
नहीं जल में थल में नभ में
तेरा कोई अन्य शरण,

शरण है लोक में कोई तो
वह है व्यवहार से
पंचपरमेष्ठी,
परमार्थ से
एक मात्र आत्मदेव है।

आत्मसिद्धि

अहो हंसात्मन्!
स्व चित्त को
कर स्थिर,
चित्त की स्थिरता ही
चैतन्य का आनंद देती है,
स्थिर चित्त पुरुष के
संपूर्ण उपलब्धियाँ
करती हैं चरण स्पर्श,
अस्थिर पुरुष
नहीं प्राप्त होता
लौकिक व
पारमार्थिक सिद्धि को,
चाहिए है आत्मसिद्धि
तो एकात्म तत्त्व में
निज को थिर कर।

चिद्रूप

अहो हंसात्मन्!
राग भाव ही
बन्धभाव है,
पुण्य पापरूप है,
पुण्य पुद्गलों का ग्रहण
पुण्य बंध है,
पापरूप पुद्गलों का
ग्रहण पाप बंध है,
जो है
निरुपराग भूत
वह तो है ध्येय भूत
निजशुद्धात्मा
परम पारणामिक
भावभूत
जो है अविनाशी
अखण्ड चिद्रूप,
नहीं ध्यान रूप
नाशवंत
वह तो द्रव्य है
अविशिष्ट ध्रुवभूत।

सत्य

अहो प्रज्ञ!
सत्य को समझ
सत्य पर चल
विश्व में सत्ता
शक्तिवान नहीं,
सत्य शक्तिवान है,
चाहे कोई
कितना ही कहे
अन्य को महान्,
पर सर्वश्रेष्ठ महान् तो
मात्र एक सत्य महान्
चाहे कोई कहे सत्य को

बालक हो या वृद्ध
मुख मुद्रा नहीं देखो,
देखो! ज्ञानी सत्य महान्
सत्य के बल से ही
हुए चौबीसों
भगवान्,
इसलिए
सत्य धर्म महान्।

ज्ञायक भाव

अहो हंसात्मन्।
पर कृत भावों को
तु क्या कर पायेगा?
शुभाशुभ परिणामों की
पर्यायों को देख,
सूक्ष्म परिणामों के
परिणमन को
तु भी नहीं जान पा रहा,
स्वयं के ज्ञायक भाव से जान
नहीं करने पर भी
परिणाम हो रहे हैं प्रतिक्षण।

पर्याय की परिणति
चल रही है स्वगति से
तू मात्र ज्ञाता
बन दृष्टाबन
उनका भी कर्त्ता
मत बन,
स्व को स्वस्थ
रखना है तो।

मूल्य

अहो हंसात्मन्!
जीवन के मूल्य का
मूल्य समझ में आना चाहिए,
जिन्हें नहीं है बोध
स्व जीवन के मूल्य का
वे उन्मत्त पुरुष हैं
स्व को पागल
बनाने के लिए तैयार हैं
जो अधिक सोचते ही मात्र
करते कुछ नहीं
विचारते-विचारते
विचार शून्य हो जाते हैं,
एक क्षण ऐसा आता
विचार विवेक की शक्ति
नष्ट हो जाती है।

महापाप

अहो हंसात्मन्!
प्रतिदिन का
सम्यक् पुरुषार्थ
विशाल कार्य को
फलित कर देता है,
अल्प भी धर्म
श्रुत और धन
प्रतिदिन संग्रह करे
पुरुषार्थी तो
समुद्र से भी
अधिक हो जाते हैं,
पुरुषार्थ
कार्यपूर्णता का है
प्रबल कारण,
भाग्य की सत्ता के साथ
प्रमादी के नहीं होती
कोई भी सिद्धि,
प्रमाद है
महापाप।

प्रमाद

अहो हंसात्मन्!
प्राणी का स्व के
अंदर है कोई महाशत्रु
उसे तु पहिचान
जो प्रत्येक क्षेत्र में
अवनति कराता है प्रदान,
उसे यदि नहीं जाना
जीव ने
तो भव-भव पायेगा
अकल्याण,
वह शत्रु
महाहिंसक क्रूर है
उसका नाम है प्रमाद
कुशल कार्यों में
करता है
हैरान।

शत्रु

अहो प्रज्ञ!
बहिरंग शत्रुसे तो
पर कर सकता है रक्षा,
पर अंतरंग शत्रु से
अन्य नहीं कर सकता
कोई भी रक्षा,
अंतरंग शत्रु पर तो
चलेगा स्व का ही पुरुषार्थ
स्व के भीतर,
बाह्य शत्रु
पर के हैं दृष्टि गोचर,
परन्तु अंतरंग शत्रु है
स्व के भीतर
अन्य की
दृष्टि के
अगोचर।

नियंत्रण

अहो प्रज्ञ!
कुशलता पर को
समझाने में प्राप्त करना
कठिन नहीं,
कुशलता कठिन है
स्वयं के लिए
समझाने में,
अन्य को
उपदेश देना सरल है,
स्व को उपदेश देना
उतना सरल नहीं है,
पर उपदेश में
शब्दों का ही
प्रयोग है
स्वोपदेश में
कषायों का है
नियंत्रण।

अनंत सुख

अहो हंसात्मन्!
स्थिर जल में
पड़ा मणि दृष्टिगोचर
होता है जैसे,
वैसे सलिल में
चैतन्यमणि दृष्टिगोचर होता है
संपूर्ण साधनाओं में
प्रधान साधना है,
मन को वश करना
भ्रमित अंत:करण को सँभाल
यही है भावना
अनंत सुख
सुधारस पान की।

माध्याह्न बेला

अहो हंसात्मन्!
दिनकर की आभा लख
अवनि अंबर को
कर रहा संतप्त,
ग्रीष्म की माध्यान्ह बेला में
पर देख रहा था समय,
प्रकृति की बेला को
समय पर बलवान
आयी बेला सन्ध्या की
आदित्य की रश्मियाँ भी
ठण्डी हो गईं
रात्री की बेला
दिवाकर अस्ताचल को
प्राप्त हो गया,
सत्य ही है
सबके दिन
एक से नहीं होते।

अपमान

अहो हंसात्मन्!
सम्मान की आकांक्षा ने
कर दिए अनेकों के
अपमान,
पर अज्ञप्राणी
भूल गया,
चाहे चाहो
स्व का सम्मान
चाहे पर का अपमान,
दोनों ही हैं
निज ध्रुव भगवान्
आत्मा का घोर अपमान,
कर्मबन्ध करा रहा
निज आत्मा में
उसका नहीं विचारे को
किञ्चित् भी ध्यान।

परिवर्तन

अहो हंसात्मन्!
समय को समझना चाहिए,
एक सा समय तो
किसी का नहीं रहा,
समय के परिवर्तन पर
स्वयं को भी परिवर्तित
कर ही लेना चाहिए,
समय पर जो स्वयं को
परिवर्तित कर लेते हैं
वे प्रसन्न रहते हैं,
जो नहीं कर पाएँ
स्वयं को परिवर्तित
वह मान में रहकर
स्वयं को ही
दु:ख दे पाए।

समय

अहो हंसात्मन्!
समय सबको
बदल देता है,
बड़ों–बड़ों को
जमीन पर गिरा देता है,
गगन में उड़ने वाले भी
पृथ्वीपर गिरते दिखते हैं,
सारे बल फीके पड़ने पर
समय अपना बल दिखा देता है,
रावण जैसे अहंकारी भी
पृथ्वी पर गिरते देखे गए हैं
मत करो मद,
समय पर
सँभल जाओ,
समय देख लेगा।

उपेक्षा

अहो हंसात्मन्!
परम सुख का
उज्जवल साधन है
उपेक्षा,
चाहे हो इंद्रिय
सुख व दुःख
सब की कर दो उपेक्षा,
शत्रु हो या मित्र
कर दो सबकी उपेक्षा,
उपेक्षावान की
करते हैं सब अपेक्षा
परम शान्ति का
है स्त्रोत उपेक्षा।

तृणतुल्य

अहो हंसात्मन्!
शील संपत्ति के सामने
सम्पूर्ण विश्व विभूति
तृणवत जान,
शील विहीन जीव
संपत्तिवान भी
तृणतुल्य जान,
मानवता विवेक शीलता
धार्मिकता विद्या वैभव
तभी तक होते हैं
शोभायमान
जब–तक
जीवन है शीलवान,
संपूर्ण व्रत है शून्य
शीलव्रत मात्र है
अंक अंकहीन
शून्य तो शून्य ही है।

आँसू

अहो हंसात्मन्!
सर्व जगत्
आकाँक्षाओं में जी रहा,
इसलिए आँखों से आँसू
गिरा रहा,
जितनी होगी
अधिक आकाँक्षाएँ
उतने होंगे आँसू अधिक,
आँखों के आँसूओं को
करना चाहते हो समाप्त,
तो मित्र! आकाक्षाओं को
कर दो समाप्त,
महापीड़ा दायक
लोक है कोई
तो वह है
इच्छाएँ।

आत्मशान्ति

अहो हंसात्मन्!
आत्मशान्ति प्रदायक
कोई है, तो
वह है संतोष,
सर्व लोक में
सर्वकाल में
वह रहता है प्रसन्न,
जिसके हृदय में है
संतोष धन,
वन अटवी मशान में
रहता है आनंद मग्न,
जिसके पास है
संतोषधन,
भव से हो जाएगा पार,
यदि रहा
आत्मा में संतोषधन।

विवेक

अहो हंसात्मन्!
विवेक बोध
अनिवार्य गुण है,
विवेक हीन पुरुष
नाना अनर्थों
की खान है,
जहाँ विवेक है
वहाँ अनेक गुण
उपस्थित हो जाते हैं,
जहाँ है विवेक का अभाव
वहाँ अनेक अवगुण

स्वयमेव आ जाते हैं,
सर्वस्व छोड़ देना,
परन्तु स्वविवेक को
मत छोड़ देना।

धैर्य

अहो हंसात्मन्!
चाहे हो अग्नि की ज्वाला,
चाहे हो तूफान,
चाहे आए
सागर की लहरें,
पर ज्ञानी!
धैर्य को नहीं छोड़ना
धैर्य के आगे सारी
विषमताएँ सिर
झुका लेती हैं,
अग्नि को पानी
होना पड़ता है
नाग को हार
सागर के जल को
थल में आना
पड़ता है जब
धैर्यशाली धर्मध्वज को
लेकर चलता है।

शिक्षाशाला

अहो हंसात्मन्!
मत करो चित्त उदास
विफलता के आने पर,
विफलता को
सफलता के हेतु,
पुरुषार्थ की
शिक्षा शाला स्वीकार
पुरुषार्थ सफलता हेतु
ही किया जाता है,
असफलता को अशुभ
क्यों स्वीकार रहा?

न दोष किसी का
ग्रह, परमात्मा का
न कोई अन्य का
ऐसा कर चिन्तवन
साधकतम करणभूत
पुरुषार्थ की रही
न्यूनता सफलता में।

महाज्वाला

अहो हंसात्मन्!
ईर्षा की ज्वाला
महाज्वाला,
अग्नि की ज्वाला में
जलता ईंधन है,
एवं तन धन मात्र ही
पर ईर्षा की ज्वाला में
तन धन ही नहीं,
अपितु जलता है
व्यक्ति का धर्म भी,
सारे जप-तप,
ध्यान, विज्ञान
तभी तक रहते हैं
व्यक्ति के पास,
जब-तक
नहीं लगी हृदय में
ईर्षा की आग ज्वाला,
साम्यता के नीर से
बुझा दो
इस ज्वाला को।

सत्यार्थ

अहो हंसात्मन्!
विश्वास के पूर्व कर
सत्यार्थ का अन्वेषण,
सत्यार्थ जाने बिना
किया गया विश्वास है
सम्यक् आस्था का घात,
स्व की आस्था
विपरीत स्थान पर
लगाना भी है
घोर हिंसा

अहिंसा धर्म रक्षक
नहीं होने देता
स्व सम्यक्
आस्था की भी हिंसा,
सतत् रहता है
प्रयत्नरत
ज्ञानी जीव
सत्यार्थ के
अन्वेषण में।

अहिंसा

अहो हंसात्मन्!
अहिंसा की जहाँ हो रक्षा
वही धर्म है सच्चा,
अहिंसा का जहाँ है अभाव
वहाँ धर्म का
ही है अभाव,
धर्मशब्द में
धर्म नहीं,
धर्म तो है
वस्तु का स्वभाव,
जो कि दया दम त्याग
समाधि से है निष्ठ
जिसमें नहीं किसी भी
जीव को कष्ट
वही है धर्म पवित्र
अन्य नहीं
अन्यथा नहीं।

मंगलोदय

अहो हंसात्मन!
जहाँ है प्रथम ही
सर्व जीवों का हित
नहीं है जिनको
किञ्चित् मात्र भी कष्ट,
तत्त्व निर्णय को देता है
जो सम्यक् शिक्षा,
जिससे होती है
प्राणियों के दीक्षा की इच्छा
जिसमें नहीं है नर-नारी के
भेद भाव का भाव,

प्राणी मात्र के प्रति
सम्यक् तत्त्व विचार
जिससे हो जाए सभी का
मंगलोदय
जिससे न रहे
मन में किंचित् भी
कर्मोदय का भाव
है सभी उदयों का सद्भाव
ऐसा है
सर्वोदय तीर्थ महान्।

स्वकृत परिणाम

अहो हंसात्मन्!
स्वभावों पर नियंत्रण
पर कृत नहीं
स्वकृत परिणाम नहीं
परमात्माकृत नहीं
अन्य आत्माकृत
शुभाशुभ भावों का कर्त्ता
आत्मा स्वयं ही है,
पर को दोष देता है
कर्त्ता स्वयं ही होता है,
भूल जा दोष देना पर को
अब तो स्वभूल को
स्वीकार ले और
उसे सुधार ले।

आदत

अहो हंसात्मन्!
आदत सम्यक् है,
तो पुरुष साधु है
आदत अशुभ है,
तो पुरुष असाधु है,
अब विचार कर
स्वयं की आदत का
बुरी आदत ही
कु–व्यसन है
कु–व्यसन महाप्रेत जान
जो एक बार लग जाए
छूट पाना कठिन है,
सर्वस्य का नाशक
कुव्यसन है।

परम औषध

अहो हंसात्मन्!
जिनवचन ही है
परम औषध,
जन्म जरा मृत्यु
के नाशक
विषय सुख के विरेचक
अमृत भूत है
सर्वकर्म क्षय के
प्रबल कारण
कुमरण के रक्षक
सुमरण कारक
जिन वचनों का
सतत ले आलम्बन,
कुवचनों का करदे
निज अंत:करण
से विसर्जन।

पूर्ण अभाव

अहो हंसात्मन्!

निजध्रुव भगवान् आत्मा
नहीं किसी पर का
कर्त्ता है,
न किसी पर का कर्म,
न किसी
पर का करण,
न किसी
पर का कार्य ही,
पर के कर्त्ता–कार्य
करणपने का है
निजात्मा में
पूर्ण अभाव।

आत्महित

अहो हंसात्मन्!
एकत्व तेरा धर्म है
तु एक था
एक ही है
एक ही रहेगा,
राग में
संयोग दिख रहा,
पर संयोग तुम्हारा
सहारा नहीं,
एकमात्र
एकत्व भाव ही तेरा
परम सहारा है,

अज्ञ प्राणी
पर संयोगों में
अपना ममत्व कर रहे,
पर आत्महित
निर्ममत्व भाव में
ही है।

गूढ़ता

अहो प्रज्ञ!
निज गुणों को
गूढ़ रख,
गर्भग्रह के तुल्य
जिनालय का
गर्भगृह होता है गूढ़,
संपूर्ण मंत्रोच्चारण की
पुण्य वर्गणा
रहती उसके लिए,
जो करता है प्रवेश
उसको मिलता है
शान्ति का लेश,
आत्म गुणों में आती है
जैसे-जैसे गूढ़ता
आनन्द आता है
वैसे-वैसे विशेष।

पुण्योदय

अहो हंसात्मन्!
पुण्योदय पर
संपूर्ण पदार्थ सुलभ-सहज
प्राप्त हो जाते हैं,
अग्निकुण्ड भी
शीतल जल हो जाता है,
पुण्य क्षीणता पर
रत्नघर भी
अग्नि ज्वाला
हो जाता है,
भिक्षा का कण भी
हाथ में नहीं आता
पुण्य अभाव में
प्राप्त द्रव्य भी
छीन लिया
जाता है।

जिनशासन

अहो हंसात्मन्!
सर्व धर्मों में
मणितुल्य श्रेष्ठ है
जिनधर्म,
जहाँ नहीं हिंसा क्रूरता
नहीं पर निन्दा
आत्म प्रशंसा का
भाव जहाँ,
नहीं परवस्तु
परस्त्री के हरण के
परिणाम,
जहाँ दया दम त्याग
समाधि के सूत्र
घोषित होते हैं
वहाँ ऐसा पवित्र
जिनशासन
जयवन्त रहता है सदा।

गति कर्मन की

अहो हंसात्मन्!
गति कर्मन की
विचित्र है,
जो रथों पर
विमानों पर चलते थे,
वे पर की शिविका
ढो रहे हैं,
जो शिविका ढोते थे
वे विमानों में
जा रहे हैं,
अहंभाव
किसी का भी नहीं

सदा रहता,
समय सबको ही
समय देता है
जीवन समता
से जियो
अहंभाव
न रहा न रहेगा
किसी का।

भाग्य की पहिचान

अहो हंसात्मन्!
श्रेष्ठ विचार
श्रेष्ठ आचार
श्रेष्ठ भाषण
श्रेष्ठ भोजन पुण्यवान
को ही प्राप्त होते हैं,
पुण्यहीन का
चिन्तवन-मनन
खोटा ही चलता है,
भोजन-भाषण कु उपसर्ग
पूर्ण होता है,
भोजन भजन
भाषण से होती है
पहिचान
जीव के
भाग्य की।

परीक्षा

अहो हंसात्मन्!
स्व पुण्य की
कर परीक्षा,
स्व स्वभाव देखकर
प्रत्येक जीव को
स्व योग्यता का
बोध हो जाता है,
पर क्या करे विचारा
अहंकार के कारण
उसे समझना
नहीं चाहता है
समझ भी जाए प्राणी
फिर भी
लोक में स्वीकार
नहीं कर पाता
कारण क्या है?
अरे! मैं किसी
से कम नहीं।

सत्ता का स्वरूप

अहो हंसात्मन्!
महासत्ता में देख
सारा विश्व है एक
जो कि है त्रिलक्षण रूप
त्रिलक्षण से रिक्त
कोई वस्तु नहीं
जो-जो होगी वस्तु
वह नियतरूप से
त्रिलक्षणभूत ही होगी,
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्व
वस्तु का है सामान्य
स्वरूप,
जो कि है महासत्ता,
पदार्थ सत्भूत है
यह तो है
महासत्ता
पदार्थ घट-पट
रूप है
विशेष वही है
आवान्तर सत्ता।

जियो सुमन जैसा

अहो हंसात्मन्!
जगति पर
सुमन जैसा जियो
यश की सुगन्ध सहित,
यश चारित्र सम्यक्ज्ञान
सम्यक् दर्शन में
मानव जीवन की
सुगंध है
रत्नत्रय गुणों से
विभूषित पुरुष
सर्वत्र सुगंधित होता,
सेन्ट इत्र की सुगंध
निकल जाती है,
चारित्र की सुगंध
भव-भव तक
सुगंधित होती है।

सुकृत्य

अहो हंसात्मन्!
जब होता है
सुकृत्य जीव का,
तब सहज योग
सब मिल जाते हैं
कुछ नहीं करने पर भी
संसार के वैभव
स्वयं आके खड़े हो जाते हैं,
जिनकी कल्पना भी
जीवन में नहीं की हो,
वे ही पदार्थ स्वयं
प्राप्त हो जाते हैं
पुण्योदय की
महिमा ही होती है,

इसलिए क्लेश छोड़
विशुद्धि में लीन हो जा
सम्पत्ति में नहीं।

सँभाल

अहो हंसात्मन्!
सँभाल ज्ञानी सँभाल
अपने पुण्य यश को
सँभाल, पुण्य एवं यश
धीरे-धीरे होता है प्राप्त,
पर प्राप्त होने पर
सँभालकर रख पाना
प्रबल पुरुषार्थ का है कार्य,
प्रतिक्षण-प्रतिपल
स्वपरिणामों की धारा
धैर्यपूर्वक
सँभालकर रखना
धीर वीरों का काम है
नहीं अधीरों का है
ये कार्य,
चित्त को प्रतिपल
तत्त्वबोध में
लीन रख।

आत्मरक्षा

अहो हंसात्मन्!
पूर्णिमा के चन्द्रमावत्
उज्जवल है चारित्र जिसका
वही पाता है
पद निर्वाण,
नहीं संयम में
निर्मलता
वह भव-भव में
भ्रमण करता है,
लोकातीत होना है
तो जगत् के लोकाचार से
कर आत्मरक्षा,

लोक का व्यवहार
क्षण को लगता है मीठा,
पर होता है
राग का जहर,
आत्मविशुद्धि का
प्राण हरण
कर लेता है।

स्वात्म-द्रव्य

अहो हंसात्मन्!
लोक रंजन में
स्वसमय को
नष्ट नहीं कर देना,
लोक में एक मात्र
स्वात्मा ही तेरा
स्वद्रव्य है,
वर्तमान में जिस शरीर में
तेरा निवास है
वह भी तेरे
अत्यन्त भिन्न ही है,
फिर अन्य के
शरीर व परिणाम
तेरे कैसे होंगे?
अन्य को
अन्य ही जान,
अन्य को निज में
मत मान।

आत्म स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
आत्मभावों में
जब-तक नहीं
परभावों का प्रवेश,
तब-तक ही
जीव के स्वकीय
परिणामों में होती है
विशुद्धि विशेष,
किंचित् मात्र भी
जीव के स्वपरिणाम
पर भावों में
करते हैं प्रवेश
वहाँ विशुद्धि का
नहीं रहता लेश,

इसलिए प्रतिक्षण
कर निज को
तत्त्वोपदेश,
आत्मा का स्वभाव
परभावों से भिन्न है।

शरण

अहो हंसात्मन्!
स्व को सँभाल
समय जा रहा
नहीं बोध किसी को
यम कब ले जाएगा,
यम के आने के पूर्व
तु धर्म के साथ होजा,
धर्म के साथ रहेगा
तो दुर्गति के गमन से
तेरी रक्षा हो जाएगी,
धर्म का साथ
छोड़ दिया मित्र,
तो कोई नहीं
बचा पायेगा
नर्क निगोद से।

कर्त्ता-हर्त्ता

अहो हंसात्मन्!
निज के रागद्वेष
भावों को कर नियंत्रित,
द्रव्यकर्म
धूलि स्वयं ही
झड़ जायेगी,
कर्म धूलि जीव के
राग-द्वेषादि
परिणामों के
निमित्त को
पाकर ही
चिपकी है,
रागद्वेष परिणामों का
चेतन्य से हो जायेगा अभाव,
कर्म धूलि
स्वमेव छूट जायेगी,
नहीं जगत् में
अन्य कोई बन्ध कर्त्ता
न बन्ध हर्त्ता
स्वयं आत्मा
कर्त्ता हर्त्ता जान।

स्वाधीनता

अहो हंसात्मन्!
प्रत्येक द्रव्य का
परिणमन स्वतंत्र है
कर्त्ताभाव स्वोपादान है
स्वोपादान में पर का
कर्त्तापन नहीं,
पर का
करण भी नहीं,
पर में निमित्त-नैमित्तिक
भाव है
कर्त्ता तो
स्वतंत्र ही है,
एक द्रव्य निज से भिन्न
द्रव्य का कर्त्ता नहीं,
करण नहीं
कार्य नहीं
अणु-अणु स्वाधीन है।

ज्ञेय स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
नहीं है लोक में
कोई द्रव्य तेरे
परिणमन का कर्त्ता,
यदि तु चाहे तो
किसी भी परभाव पर
तेरे खोटे भाव ही
न जाएँ,
तु स्वयं चाहता है
पर पदार्थ में
भोगवृत्ति को,

पदार्थ तो
पदार्थ ही हैं
न वे हेय हैं
न उपादेय
वे तो मात्र ज्ञेय हैं,
अशुभ भाव में हेय है,
शुभ भावों में
उपादेय है
भाव तो
निज में ही है।

स्वतंत्रता

अहो हंसात्मन्!
भूमि पर अभिनव
पतित पानी तो
पानी है, पानी
स्व स्वभाव में है,
फिर भी पृथ्वी तल
पर हुआ परिणमन
अनेक रूप,
कहीं हरियाली कहीं पीलापन
कहीं श्वेत छत्रक हो
रहा है उत्पन्न,

वही पुद्गल परमाणु
इन्द्रगोव की अवस्था को
कर रहे परिणमन,
पानी तो मात्र निमित्त ही है
फिर भी प्रत्येक परमाणु
स्व-स्व योग्यता
कर रहे हैं परिणमन,
जानो सही
कर्त्ता होता है स्वतंत्र।

स्वतंत्रसत्ता

अहो हंसात्मन्!
द्रव्य की द्रव्यता
त्रैकालिक है,
क्रियावती शक्ति
भगवती शक्ति से
संपन्न है,
प्रत्येक द्रव्य की सत्ता
स्वतंत्र है,
एक भी द्रव्य
स्व से भिन्न
द्रव्य का
उपादान नहीं,
स्व-स्व द्रव्य का
उपादान स्व स्वभाव ही है,
वस्तु द्रव्य पर्याय
गुणपर्याय का पिण्ड है,
द्रव्य के
भूतार्थ स्वभाव का
बोधकर,
निज ध्रुवात्मा का
शोध कर।

संबंध

अहो हंसात्मन्!
क्या तु आगम
वचनों को भूल गया?
प्रत्येक द्रव्य का
परिणमन स्वतंत्र है,
पर भाव निमित्त मात्र ही है,
निमित्त होता है
तभी जब नैमित्तिक
स्वकार्य से परिणत
हो रहा हो,
जिसमें कार्य होने की
नहीं है योग्यता
वहाँ पर द्रव्य
निमित्त होता नहीं,
क्यों तु हो रहा
संक्लेशता को प्राप्त,
जीवों का सुधार
स्वयोग्यता पर ही है
आलम्बित।

सत्यार्थ देशना

अहो हंसात्मन्!
भूतार्थ तत्त्व का
स्वप्रज्ञा से कर
तु सम्यक्-निर्णय
लोकमत में धर्म
की खोज मतकर,
लोकमत नहीं
सर्वज्ञ देशना,
सर्वज्ञ देशना से
भिन्न जो भी है
वे सब नहीं
सत्यार्थ प्रकाशक देशना,
विश्वधरातल पर
यदि कोई है
सत्यार्थ प्रकाशक देशना
तो वह है
अरिहन्त देशना।

स्वप्रज्ञा

अहो हंसात्मन्!
जिन भावों से
भव वृद्धि हो रही,
उन भावों की तु
कर स्वबुद्धि से हानि,
स्वप्रज्ञा से
बन्ध हेतुओं से
आत्मदेव की
तु कर रक्षा,
यदि है करुणा
तेरे अंतःकरण में,
तो विषय-कषाय
राग-द्वेष काम क्रोधादि
से तु हो जा पूर्ण भिन्न,
आत्मगुणों में
रहो अभिन्न।

प्रज्ञ पुरुष

अहो हंसात्मन्!
नर देह उत्तम देश
उज्जवल कुल
वीतराग धर्म के प्रति रुचि
पापोदय से
प्राप्त होती नहीं,
प्रबल–प्रबल जब
जीव करता है
पुण्य कर्म
तब कहीं होती है
उपलब्धि
महान् कार्य की,
अज्ञानी पुण्यक्षीण
अधमनर करते हैं
समय का क्षय
विषय कषाय में,
प्रज्ञ पुरुष क्षण–क्षण का
करते हैं उपयोग
निजात्म कल्याण में।

श्रुतसागर

अहो हंसात्मन्!
आनंद कंद भगवानात्मा
अनंत आनंद का
पिण्ड है,
श्रुत महोदधि से
परम तत्त्व निर्णय के
रत्नों का कोष है,
नय प्रमाण की उज्जवल
चमक से युक्त है,
मोक्ष महाअर्घ से
संपन्न है
ऐसा है श्रुत सागर,
उसी में हो जा
तु मग्न।

निर्मोह भाव

अहो हंसात्मन्!
लोक रंजन में
एकत्व विभक्त
भाव का स्थान
कहाँ?
हास्य विनोद रति
अरति भाव ही
होगा लोक रंजन में,
जो कि चारित्र मोहनीय
कर्म बन्ध का
कारण है,
एकत्व विभक्त में
मोह पाप के अभाव का
उपाय है,
तु समझ
सम्यक् तत्त्व को
निर्मोह भाव ही
मोक्ष तत्त्व की
प्राप्ति का उपाय है।

आत्म ज्ञान

अहो हंसात्मन्!

आत्मज्ञान शब्दज्ञान में

भेद जान,

शब्दश्रुत

द्रव्य श्रुत शब्दब्रह्म है,

जो की पुद्गल भूत है,

शब्दब्रह्म आत्मब्रह्म

का कारण तो है,

परन्तु साधकतम तो

आत्मब्रह्म ही है,

जहाँ पुद्गल की

पर्याय शब्द का

कोई उच्चारण नहीं

शब्द का चिन्तवन नहीं,

मात्र ज्ञायक की लीनता ही

आत्मज्ञान का विषय जान।

राग

अहो हंसात्मन्!
रागादि भाव
बन्ध के हैं कारण,
क्षण–क्षण में
करा रहे हैं कर्म बंध
चाहे जीव समझे न समझे,
परन्तु कर्मबन्ध तो
समय प्रमाण काल भी
रुकता नहीं,
जीव करे राग
चाहे मन से
चाहे वचन से
व काय से,
पंचेन्द्रिय विषयों में
जो भी होगा राग
वह तो करायेगा बन्ध,
बन्ध का करना है अभाव,
तो राग का
कर दो अभाव।

श्रुताराधना

अहो हंसात्मन्!

श्रुताराधना जीवन की

है महान् साधना,

कलियुग में

साधक के लिए साधना की

प्राण है श्रुताराधना,

अस्थिर चित्त को

सँभालने वाली

जननी है श्रुताराधना,

एकान्त में

अनेकांत का

बोध कराती है

श्रुताराधना,

भाग्यहीनों को भी

भगवान् बनाती है

श्रुताराधना।

पगडंडी

अहो हंसात्मन्!
पग-पग पर
है फिसलन,
चलना तु सँभल-सँभल कर
लेकर सहारा
पंच परमगुरु का,
विवेक लोचन से
देख देखकर चल,
नहीं लोक पंक में
अन्य कोई सहारा,
भावों की पगडंडी
बहुत ही पतली है
दुर्गति की नीचे खाई है
तु चल-चलना
बंद नहीं कर
पर चलना
सँभल के।

चैतन्य स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
अल्पश्रुत का मान
नहीं करना,
पूर्व श्रुतवानों को देखो
जो थे पूर्वा पर
द्वादशांग के ज्ञाता,
फिर भी
रखते थे निज
चित्त में साता,
क्षायोपशमिक ज्ञान
नहीं है निज आत्मा की
ध्रुव पहिचान

ध्रुव ज्ञान है एक
असहाय क्षायिक ज्ञान
केवलज्ञान,
नहीं होता है
जिसका अभाव
वह परम पारणामिक
चैतन्य स्वभाव।

गुरु उपकार

अहो हंसात्मन्!
गुरु के उपकार
अनंत होते हैं
शिष्य के ऊपर,
गुरु अपने बोध को
विवेक से
शिष्य के भीतर
भर देता है लवालव,
तब शिष्य भी
गुरुज्ञान से
भर जाता है, फिर भी
सच्चा शिष्य
गुरु चरणों में
लघु बनकर ही
रहता है
गुरु पर शिष्य
गुरु नहीं होता,
यह परम्परा है
सनातन।

सद्गुरु से सद्बोध

अहो हंसात्मन्!
श्रुत बोध दिया है
सद्गुरु ने,
बोध पाकर गुरु को
मत भूल जाना,
गुरु बिना
बोध बोधी दोनों
प्राप्त होते नहीं,
बोध बोधी के
अभाव में समाधि
संभव नहीं,
समाधि के बिना
निर्वाण श्री मिलती नहीं,

समझ तु
शिष्य विवेक से,
गुरु ने तुझे
निर्वाण मार्ग
प्रशस्त किया है
तु मान उपकार
यही उनका।

राग हटाओ

अहो हंसात्मन्!
राग के वश होकर
जीव ने अपना
सर्वस्य व्यय कर दिया,
पूँछ के
एक बाल के राग में
चामरी गाय ने
अपने प्राण खो दिए,
अहो-अहो
जगत् की
बालाओं के राग में
कितने बालकों के प्राण
छिन गए, इसलिए
राग हटाओ
कष्ट मिटाओ।

महाज्वाला राग

अहो हंसात्मन्!
राग महा ज्वाला ने
भस्म कर दिए
अनेकों भव्यों के
विशुद्ध भावों को,
तभी तक रहता है
जीव के पास
ज्ञान विज्ञान
तभी है संपूर्ण तपोनुष्ठान
तभी तक सर्व,
यम नियम,

तभी तक
अध्ययन और ध्यान,
तभी तक है
प्रियजनों के प्रति
गुरुजनों के प्रति
प्रेम जब-तक
नहीं लगा किसी
रागनी में राग।

करुणा के दीप

अहो हंसात्मन्!
वात्सल्य करुणा के
दीप जलाओ,
जातिवाद सम्प्रदाय
की आँधी से
प्रेम का दीप
बुझने न पाए,
घर-घर में
वर्धमान भगवान्
महावीर के नाम की
सुगन्ध छा जाए,
कषायों की
फुलझड़ियाँ न जलें,
विद्वेष के
फटाखे न फूटें
ऐसी हो पावन
दीवाली।

परम ज्योति

अहो हंसात्मन्!
सद्बोध दीप से ही
मिटेगा अज्ञान का तम,
मिथ्यात्व असंयम अज्ञान का
लोक में महा-अन्धकार
सम्यक् ज्ञान सद् श्रृद्धान
सदाचार ही है
दिव्य प्रकाश, रत्नत्रय के
आलौकिक प्रकाश को
ले जा निज में

मिट जायेगा
भव-भव का
अन्धकार,
पायेगा फिर तु
ज्ञानी! परम ज्योति
केवल्य प्रकाश।

शुद्धात्मा

अहो हंसात्मन्!
शुद्धात्मा को
शुद्धनय से जान
शुद्धनय से जानेगा
तो शुद्धात्मा की
ही प्राप्ति होगी
अशुद्ध नय से
जानेगा तो अशुद्धात्मा
की ही प्राप्ति होगी
शुद्धात्मा में पर
का कर्त्तापन नहीं,
पर में निज ध्रुव
शुद्धात्मा का भी
कर्त्तापन नहीं।

पूर्ण अभाव

अहो हंसात्मन्!
चैतन्य द्रव्य पर
जड़भूत व अन्य
चैतन्य भूत अन्य
के कर्त्ता करण
कर्मपने से रहित है
स्व का भी
अन्य पर कर्त्ता नहीं
एक मात्र ध्रुव
ज्ञायक भाव ही
मेरा अखण्ड भाव है,
ज्ञान स्वभाव से भिन्न,
अन्यभाव का नहीं
स्व-स्वभाव में
सद्भाव।

परमानंद

अहो हंसात्मन्!
कर निजस्वभाव
का अनुभवन
निज स्वभाव के
वेदन में ही है
परमानंद,
जिसमें
नहीं किसी विकारी
भाव का सद्भाव
जब–जब जीव
हुआ है बेहाल
तब–तब रहा है
परभावों के साथ,
स्वभाव की
स्थिरता में
अन्य विकारी भावों का
रहता है पूर्ण अभाव
परभावों से शून्य भाव
का आनंद ही है
परमानंद।

घातक

अहो हंसात्मन्!
ममत्व भाव में
उलझा प्राणी
दुःखियों का है स्वामी,
नहीं विवेक अज्ञ को
एकत्व विभक्त्व
के आनंद का,
नहीं बोध
विषयों की ज्वाला में
जलने वालों को,
समाधि जल से पूर्ण
चैतन्य शीतल सरोवर का,
मोही प्राणी पर के पीछे
स्वात्मा के पूर्वानन्द को
खो रहा,
विषयों के दल-दल में फँसकर
आत्मविशुद्धि हीन
होकर रो रहा।

कर्त्तव्य बोध

अहो हंसात्मन्!
जीवन जीना
यदि है सबका अधिकार,
तो अन्य को जीने देना भी
तो है सबका कर्त्तव्य,
अधिकार चाहने वाले को
अपने कर्त्तव्य का
ध्यान रखना है अनिवार्य,
मात्र अधिकार की
करें बात
वे हैं पूर्ण स्वार्थीजन,
संसार के स्वार्थों का
त्यागकर
जो जीतता है
वह है
एक साधु पुरुष।

संन्यास

अहो हंसात्मन्!
स्वात्म सुख के
भाव यदि हैं
तो पर भावों
से निज को
तु कर ले पृथक्
स्व उपकार में
लग जा,
पल–पल
एक पल भी
जीवन का
व्यर्थ नहीं जाने दो,
आत्म हितार्थ
संपूर्ण परभावों से
ले तु संन्यास,
यही है स्वहित का
प्रबल पुरुषार्थ।

सिद्धि

अहो हंसात्मन्!
दया दम
त्याग समाधि,
स्व चतुष्टय पर
है लक्ष्य जिसका
अनंत चतुष्टय
की प्राप्ती होती
उसी को,
प्राणी मात्र पर
है करुणा बुद्धि
जिसकी,
सुबुद्धि होती है
उसी की,

संग्रह बुद्धि छोड़कर
त्याग पर दृष्टि
इन्द्रियों के दमन
से ही होती है
समाधि की सिद्धि,
समाधि ही
ले जाती है
साधक को
निर्वाण सिद्धि
की ओर।

सम्पत्ति

अहो हंसात्मन्!
स्व परिणामों की
कर रक्षा,
विषय कषाय लुटेरों से
क्षण-क्षण में
विशुद्धि सम्पत्ति
सुमतिधन का
कर रहे हैं हरण
न दिन देखते हैं
न रात्रि, वे तो
दिन-रात लुट
रहे हैं,
विवेक अस्त्र लेकर
कर रक्षा कुबुद्धि
की सेना से
आत्महित है
इसी में।

सत्यार्थ प्रवचन

अहो हंसात्मन्!

सद्बोध प्रकट हो

शोक संताप का

नाश हो,

परस्पर में

मैत्री भाव का

जन्म हो,

असंयम का

त्याग हो

संयम में

अनुराग हो

अप्रभावना का

क्षय हो,

श्री जिनशासन का

प्रभाव हो

ऐसा प्रवचन ही

सत्यार्थ प्रवचन।

गुंजन

अहो हंसात्मन्!
वाणी वीणा ही
गुंजन करे,
भक्त मृग श्रद्धा से
श्रवण करे,
श्रवण कर
तत्त्व का
सच्चे श्रमण बनें,
निर्ग्रन्थ श्रमण बनकर
अरहन्त बने,
सर्वज्ञ देशना
देकर कोटी-कोटी
जीवों का
कल्याण कर
फिर वे ही
निकल परमात्मा
सिद्ध बने।

ध्रुवस्वभाव

अहो हंसात्मन्!
एक ध्रुव अचल
निरालम्ब भाव ही
त्रैकालिक स्वभाव है
निजात्मा का,
आत्मद्रव्य
त्रैकालिक स्व में कार्य
करण भाव शून्य है,
जो ध्रुव है वह
कार्य नहीं
किसी का
कारण भी नहीं
वह तो सत् है
अहेतुक अजन्मा है
स्व में
परिणाम
परिणामी
स्वरूप है।

सिद्धाचल के भूप

अहो हंसात्मन्!
ध्रुव स्वभाव में
लीन हो,
शुद्ध नय का
आश्रय कर,
प्रभु वर्धमान महावीर
सत् बोध को प्राप्त
सन्मति वीर अतिवीर
कर्म अरि को जीतकर
बन गए अरिजित,
अमावस्या की उष्मा
की बेला में
पूर्ण स्वतंत्र हो
बन गए
सिद्धाचल के भूप।

परिचय

अहो हंसात्मन्!
जो ज्ञायक से
परिचित हो गया
उसको नहीं अन्य से
कोई परिचय,
देह देश नगर
जाति–पन्थ
सम्प्रदाय के
परिचय
वही देते हैं
जो निज ज्ञायक से
अपरिचित होते हैं,
पर्यायों के मूढ़
निज परमात्मा को
जानते नहीं।

ज्ञानज्ञेय स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
ज्ञान ज्ञेय
स्वभाव को
पहिचान,
पर ज्ञेयज्ञाता का
धर्म नहीं,
ज्ञाता
पर ज्ञेयों का
धर्मी नहीं
भिन्न युत सिद्ध में
धर्म–धर्मी भाव नहीं,
स्व धर्म धर्मी भाव
रहता है,

अयुत सिद्ध में
स्वज्ञान ज्ञेय
ज्ञाता भाव है
त्रैकालिक
निजस्वभाव
अयुत सिद्ध
स्वभाव।

वर्धमान वन्दना

अहो हंसात्मन्!
श्रीयुत श्रीवर्धमान का
हुआ आज निर्वाण
कर्म कलंक का नाशकर
बन गए वे
निष्कलंक भगवान्,
अनंत गुण मण्डित
शिवपुर वासी
वीर वर्धमान
अष्ट कर्म नाशक
अष्ट गुण प्रकाशक
अक्षय निधि सम्पन्न

जन्म जरा मृत्यु
क्षयकारक
परमात्म प्रकाशक
कोटि-कोटि
तुम्हें नमन।

परमामृत

अहो हंसात्मन्!

भव दु:ख नाशक

शिवसुख दायक है

श्री जिनेन्द्र वचन,

जीवन के पल-पल में

परम बंधुवत

उपकारक है

श्री जिनेन्द्र वचन,

वन-उपवन में

महल मशान में

अमित्रों को

मित्रवत है

श्री जिनेन्द्र वचन

जीवन की अंतिम

श्वाँस में सँभालने वाले

निर्यापक वत हैं

श्री जिनेन्द्र वचन।

प्रबल शत्रु मोह

अहो हंसात्मन्!
प्रबल शत्रु आत्मा
का विश्व में
मोहनीय कर्म है,
जिस पर हो जाए सवार
उसे पल मात्र भी
शान्ति का वेदन
नहीं करने देता,
उन्मत्त
हो जाता
है मोही,
कभी गाता
कभी हँसता
कभी रोता है मोही
तीव्र मोह के
वश होकर
प्राण भी
छोड़ देता है
मोही।

कर्मों का सम्राट्

अहो हंसात्मन्!
पल भर चैन नहीं
लेने देता जीवको
क्षण-क्षण विभल
कर देता है,
शोक क्लेश
का घर है,
स्वस्थ्य चित्त एवं
शरीर को
क्षण मात्र में रुग्ण
करा देता है,
पर में प्रीति
निज अप्रीति
उत्पन्न करा
देता है,
उसका नाम है
कर्मों का
सम्राट्
मोहनीय कर्म।

परमार्थ ज्ञाता

अहो हंसात्मन्!
आनंद कंद में लीन
वे ही होते हैं
जो मोह शत्रु से
विजयी होते हैं,
जो मोह को
जीतकर
निज ज्ञान स्वभाव में
मग्न होते हैं
वे ही जित मोही
तपोधन
परमार्थ के
ज्ञाता होते हैं,
नहीं सताती उन्हें
लोक की सुंदर
ललनाएँ, वे मात्र
आत्मरमणी में ही
रमण करते हैं।

ज्ञायक स्वभावी

अहो हंसात्मन्!
कर तु तत्त्व विचार
एकत्व विभक्त्व
निज चिद्ब्रह्म से
भिन्न लोक में
अन्य नहीं
कोई तेरा
परम शरण,
मृगेन्द्र के
मुख में
मृग का
शरण कोई नहीं,

यम के मुख में पर्याय का
शरण कोई नहीं,
इसलिए तु प्रतिक्षण
व्यवहार से
पंच परमगुरु का
आश्रय ले,
परमार्थ से
एक निज
ज्ञायक स्वभावी
आत्मा का।

श्रुतसंवेगी

अहो हंसात्मन्!
श्रुत संवेग भाव
प्रकट है जिसके
अंतरंग में
वही वैराग्य
भाव में जी
सकता है,
वैराग्य है
यदि जीवित
तो प्राणी
संयम का
जीवन हर्षित
हो जी सकता है,
वैराग्य शून्य होकर
जिसने चारित्र
धारण कर लिया
वह संयम को
नर्कों की वेदना
से देखता है,
वैराग्य को
सँभाल
है यदि मोक्षभाव।

धर्म

अहो हंसात्मन्!
सम्यक् बोध
अतिदुर्लभ ज्ञान,
कुमति के कुप्रभाव से
अज्ञानी हिंसाकर्म में
धर्म मान रहे,
जहाँ जीवों पर
करुणा नहीं
वहाँ धर्म का
लेश न नाम,
कोई मूढ़ जीव
बलि में धर्म खोजते
तो कोई कुधी
अस्त्र-शस्त्र चलाने
फटाके फोड़ने में
धर्म देख रहे,
पर नहीं होते हैं
क्रूर कर्म धर्म,
धर्म तो दया में
होता है विशुद्ध।

धर्म-अधर्म

अहो हंसात्मन्!
कुबुद्धि की क्या
गायें महिमा,
खाने को दाने-दाने
के हैं लाले, फिर भी
फटाके फोड़ते हैं विचारे,
कोटि-कोटि
क्षुद्र जीवों को
झुलसा कर
हर्ष मनायें,
अपनी स्व बुद्धि का
जग में परिचय
करा रहे,

क्या हुआ भी है
ऐसा कोई महापुरुष
जो हिंसा में धर्म बताए?
यदि किसी अल्पधी ने
हिंसा में धर्म कह दिया,
तो क्या वह
महापुरुष कहलाए?

जिनेन्द्र देशना

अहो हंसात्मन्!
धन्य-धन्य-धन्य है
श्री जिनवर का
अहिंसा शासन
जिसमें प्राणियों के
वध का ही नहीं,
अपितु बदनाम
करने को भी
पाप कहा है,
यदि स्वीकारते हो
स्व को सत्य धर्मात्मा,
तो प्राणीवध को
धर्म कहना बंद करो,
करुणा दया का
सत्यार्थ पाठ पढ़ो,
यही है सम्यक्
श्री जिनेन्द्र की देशना।

चर्चा-चर्या

अहो हंसात्मन्!
लोक में लौकिक जन
चर्चायें करते हैं सुंदर,
जितनी सुंदर
चर्चायें करते,
उतनी सुंदर चर्या
करते तो
यह जीव तिर जाता,
चर्चाओं का सुंदरत्व
पांडित्य का
परिचायक है,
चर्या की सुंदरता
मोक्षमार्गी का
परिचायक है,
वाणी भूषण
मात्र ही नहीं,
चारित्र भूषण
भी बनो।

भोग-भावना

अहो हंसात्मन्!
जो-जो होती हैं
उत्पन्न वे सब
नष्ट होने के लिए
पर्यायें परिणमन
स्वभावी हैं,
पर्यायों को कोई
सँभाल नहीं पाया,
परिणामों को
सँभाल ले तो,
पुनः पुनः संसारी
पर्यायों में परिभ्रमण
नहीं करना पड़े,
स्व-पर करुणा कर
भोगों के भोग ही
नहीं भोग
भावना का भी
तु त्याग कर।

अवाच्य

अहो हंसात्मन्!
स्वरूप बोध नहीं
वचन के गोचर,
स्वरूपानुभूति
अनुभव गम्य है
जो जो है
अनुभव गम्य
वे सब शब्दों
के अविषय हैं,
शब्दातीत आत्मानंद है,
शब्दों में नहीं
आत्मानंद,

अशरीरी
बनने का मार्ग तो
परमार्थ से ही है
लौकिक कार्यों में
अशरीरी की
सिद्धि नहीं।

परम रसायन

अहो हंसात्मन्!
परम रसायन
परम ब्रह्म
ब्रह्मचर्य पालक
सर्वश्रेष्ठ नरों में
नरोत्तम जान,
ब्रह्महीन का जीवन
पशुतुल्य पहिचान,
शीलवान की
महिमा नर देव
मुनिगण भी
गाते हैं,
शील विहीन के
सगे भी
पर हो जाते हैं,
शीलव्रत धारण कर
जीव अजर-अमर
हो जाते हैं।

ममकार-अहंकार

अहो हंसात्मन्!
ममकार अहंकार
उभय मोक्षमार्ग के
अर्गला जान,
अहंकार ममकार को
जब-तक जीव
अपने पास रखेगा
तब-तक विशुद्धि का वास
स्वात्म गृह में,
नहीं हो सकेगा,
जहाँ विशुद्धि का
अभाव है
वहाँ निर्जरा और
संवर का वास
नहीं हो सकता,
निर्जरा संवर के बिना
मोक्ष की सिद्धि
शशी सींगवत जान।

ध्रुव स्वभाव

अहो हंसात्मन्!
ध्रुव अचल
एकत्व को जान,
क्षण-क्षण भूत पर्याय
ज्ञेय हैं
तेरा ज्ञान नहीं
ज्ञान का विषय है
उनका तुझे
ज्ञान अवश्य है,
परन्तु वे तेरा
ज्ञान नहीं,
ऐसा ज्ञायक का
भाव ही तेरा है
ध्रुव स्वभाव।

भगवान्–आत्मा

अहो हंसात्मन्!

सत् अहेतुक है

ज्ञाता है ज्ञानी है

स्वस्वभाव में

स्वज्ञेय भी है,

स्पर्श रस गंध

वर्ण गुण शब्द

पर्याय शून्य है,

स्पर्श रस

गंध वर्ण शब्द के

ज्ञान शून्य नहीं,

स्पर्श रस

गंध वर्ण के

भोग शून्य है,

ऐसा

त्रैकालिक

ध्रुव ज्ञायक स्वभावी

भगवान् आत्मा है।

मोह-रिपु

अहो हंसात्मन्!
क्षण-क्षण
पर्यायों के पीछे
अज्ञ
त्रैकालिक को भूल रहा,
जो नहीं रहेगी सदा
इस बात को
जान रहा,
फिर भी
मोह वश होकर
मान नहीं रहा

क्या है बिडम्बना
दुष्ट मोह रिपु की,
सँभल जा ज्ञानी!
नहीं तो भव-भव में
पछताएगा।

परिवर्तन

अहो हंसात्मन्!
परिवर्तन वस्तु
का स्वभाव है
जो की नियत है,
इस नियत्ता पर
नहीं चलता
किसी का पुरुषार्थ,
उत्पाद व्यय ध्रौव्य
सत् का लक्षण है,
वही तो द्रव्य है
कल कुछ था
आज कुछ है
कल कुछ
और ही होगा।

नियत-परिणमन

अहो हंसात्मन्!
आने वाले जाते हैं
यह बात पुरानी है,
क्यों तुम उन्हें
जाते देख,
डालते हो
आँखों में पानी,
क्या नहीं गए
तीर्थंकर चक्री
नारायण प्रतिनारायण
बलभद्र से ज्ञानी,
जो है स्वभाव
प्रकृति का उस पर
नहीं चलती
किसी की मनमानी।

किंपाकः विषयसुख

अहो हंसात्मन्!
विषय सुख
किंपाक फलवत जान,
देखने में सुंदर लगते
सेवन करने पर
हरते हैं प्राण,
विषय-सुख
देखने पर
लगते हैं सुहावने,
पर सेवन पर
देते हैं कटुकफल,
नर्क निगोद में
दिलाते हैं स्थान,
ऐसे हैं
विषयों के सुख,
भो ज्ञानी!
तु जान।

भवान्त

अहो हंसात्मन्!
संयम दिवस की
कर याद,
कितनी विशुद्धि से
तूने लिए थे व्रत,
थी आत्मकल्याण
की भावना,
उस भावना का
मतकर अभाव,
भव नाश
उसी से होगा,
जगत् का
राग रंजन
नहीं आयेगा
कल्याण में काम।

अध्यात्म विद्या

अहो हंसात्मन्!
अध्यात्म विद्या
सर्व विद्याओं में
है प्रधान
विद्या करती है
सर्व अविद्याओं
का नाश,
स्वप्रसाद से
पहुँचाती है
जीवों को
अविनाशी धाम,
जहाँ नहीं
दु:खों को स्थान,
करो सतत अभ्यास
प्रमाद त्याग कर
अध्यात्म विद्या का
हो जाएगा नाश
सर्व अविद्याओं का।

परिवर्तन

अहो हंसात्मन्!
पुण्योदय पर
मत अहं करो,
पुण्य भी व्यय को
प्राप्त हो जाता है,
प्रातः की बेला में
कुछ होता है
संध्या में कुछ और ही
होते देखा जाता है,
मुद्रायें परिवर्तन
होती हैं
धातु वही रहती है,
चैतन्य धातु पर
लक्ष्य रख शेष
पर्यायें तो
परिवर्तन स्वरूप हैं।

परम धर्म

अहो हंसात्मन्!
जगति में
अहिंसा परम धर्म है,
सर्वधर्म शून्य है
अहिंसा अंक है,
अंक विहीन
शून्य तो
शून्य ही है।
यदि अंक है तो
शून्य अर्घवान है,
कोटि यज्ञ
शून्य हैं

एक जीव की
रक्षा के सामने
प्राण रक्षक
महापुण्यवान है,
करो रक्षा अहिंसा की
तुम्हारी रक्षा
स्वमेव
हो जाएगी।

कर्म-विपाक

अहो हंसात्मन्!
पुण्य पाप के
विपाक को
मत भूल जाना,
जो दिख रहा है
लोक यश
मान सम्मान
वह पुण्य का
विपाक है,
पुण्य विपाक पर
सर्वत्र होता है
सत्कार पुरुष्कार,
पाप विपाक के
आने पर दर-दर
भटकना पड़ता है
उभय कर्म के
विपाक को जान।

आप्त

अहो हंसात्मन्!
सर्वज्ञ सर्वदृष्टा
हितोपदेशक ही
सच्चा आप्त है,
अज्ञान अविद्या
तत्त्व देशना शून्य
नहीं होता
कोई अज्ञानी प्राणी
सच्चा आप्त,
नहीं नर कपाल
नहीं तिलक युक्त भाल,
नहीं मृगछाल
एक मात्र जो है
वीतराग शरीर
संसार शून्य
आत्मतत्त्वलीन
कर्म शत्रु शून्य
जो हैं वे हैं
वन्दनीय जिनेश्वर।

ईर्षा

अहो हंसात्मन्!
ईर्षा व्यक्ति के
व्यक्तित्व का
नाश कर देती है,
जगत् स्व इच्छा में
जीता है
होती है जिसको
जिसकी इच्छा
वही लगता है अच्छा
नहीं होती जिससे
इच्छा की पूर्ति
वही दिखता है
शत्रु,
ईर्षा से
कर अपनी रक्षा
तो हो जाएगी
तेरी कर्मों से रक्षा।

आत्म धर्म

अहो हंसात्मन्!
स्व भावों की
कर रक्षा,
विशुद्धि की उपलब्धि
अन्यत्र कहीं होती नहीं,
विशुद्धि तो प्राणी के
स्व परिणामों में ही
जन्म लेती है,
पर के पीछे
स्व विशुद्धि को
पीछे मत कर लेना

गुरु शिष्य का संबंध
बाह्य धर्म है,
आत्म धर्म तो
आत्म विशुद्धि ही है।

सम्यक् प्रज्ञा

अहो हंसात्मन्!

मत करो पर के

अवगुणों का शोर,

किसने जाना

किसका योग,

पर दोष देखकर

स्व में कर

तत दोषों का निरोध,

उपहास किसी का

श्रेष्ठ नहीं

जिसपर उपहास है

उसकी उपासना

स्वयं नहीं करना

यही विवेकी की

सम्यक् की पहिचान।

संयोग

अहो हंसात्मन्!
संयोग विभिन्न मिलेंगे,
पर विभिन्न संयोगों में
निज स्वभाव
से भिन्न नहीं
हो जाना,
संयोगों के लिए
उपदेश तो दो,
पर सुधार का
विकल्प नहीं लाना,
प्रत्येक जीव
की सुधार
सुयोग्यता पर
ही होगी
स्व प्रज्ञा के
अभाव में
पर ज्ञान
किसी को ज्ञानी
नहीं बनाता।

समय

अहो हंसात्मन्!
समय से समय को
समझ पाना
समय का प्रबल
पुण्य पुरुषार्थ है,
बड़े-बड़े लोग
समय पर
स्व समय नहीं
समझ पाए,
इसलिए संसार में
भ्रमण कर रहे,
स्व समय के
समझने के लिए
पर समय से,
निज को भिन्न देख।

आत्मावलोकन

अहो हंसात्मन्!
मत देखो कमी
किसी की,
स्वयं के लिए
देखो मैं कैसा हूँ,
पर दोष अन्वेषण
दोषी ही बनाएगा
आत्म दोषण का
आलोचन
निर्दोष बनाएगा,
ज्ञानी जन
पर निन्दा में
समय नष्ट नहीं करते,
पल-पल में
स्व समय की
रक्षा ही
करते हैं।

महाआग

अहो हंसात्मन्!
सुख शान्ति आनंद का
करना है रसपान,
तो रागरस से कर
प्रतिक्षण आत्मरक्षा
राग है महादुःख
का कारण,
अनंत हुए हैं दुःखी
थे भूत में दुःखी
भविष्य में भी होंगे
दुःखी,
वे वे ही हैं
जो रागद्वेष से
लिप्त हैं,
महाआग है
यदि कोई
तो वह है
राग-राग।

सुवचन-पयस

अहो हंसात्मन्!
सुवचन का
कर प्रयोग
जो जन-जन के
हृदय को
आनंदकारी है,
कटुक वचन
विषभूत विकारी है,
वचन बने अमृत
जो भव्यों के हृदयसाद
होती है
नहीं विषभूत
जो प्राण हरण
हारी है।

पृच्छना

अहो हंसात्मन्!
स्व परिणामों से
कर पृच्छना,
संयम मार्ग
स्वीकारा क्यों?
जिस उद्देश्य
को लेकर
स्वीकार किया था संयम
उस उद्देश्य को
पूर्ण कर,
यदि नहीं किया
उद्देश्य को पूर्ण
तो आर्जव
मार्दव धर्म को
तेरे अभाव हुआ,
मायाचारी का जो
होता है फल
वही होगा तुझे
इसे स्वीकार कर।

पारखी

अहो हंसात्मन्!
पर के नेत्रों में
श्रेष्ठ बनकर
आना नहीं है
कठिन कार्य,
पर तो बाह्यार्थ
का करता है
अवलोकन,
स्व की दृष्टि में
श्रेष्ठ बनकर
बैठना है कठिन,
प्रतिपल स्वार्थ का
अवलोकन
श्रेष्ठ साधक की
श्रेष्ठ साधना का
पारखी है
स्वचैतन्य।

विधि-पुरुषार्थ

अहो हंसात्मन्!
पुरुष करे
स्व पुरुषार्थ सम्यक् तो
सर्व कार्य
पूर्ण हो जाते हैं,
पुरुषार्थ विधि की
निर्मलता के
साथ है तो
नहीं विषय कठिन
कार्य है,
दैव की दृष्टि भी
पुरुषार्थ के साथ
सम्यक् होना
अनिवार्य है,
पुरुषार्थ दैव
दोनों के
नियोग से
होता है
कार्य
का संयोग।

शरण

अहो हंसात्मन्!
मायाचारी
दीर्घ समय तक
सुरक्षित रहती नहीं,
माया प्रकट हो
उसके पूर्व
आर्जव धर्म को
करले प्रकट
संसार में
धर्म से भिन्न
नहीं अन्य
कोई भी शरण,

घोर-घोर
अशुभ कर्म
धर्म के
प्रभाव से
हो जाते हैं
शमन,
ऐसा है अरहंत वचन।

महान्सूत्र

अहो हंसात्मन्!
जिनवर धर्म महान्
नहीं जहाँ हिंसादि
विकारों का कोई स्थान,
जियो और
जीने देने का
गूँजता है सतत
सूत्र महान्,
इस सूत्र पर
चलने से ही
बनता है जीव
श्री भगवान्,

जो नहीं चल पाता
इस सूत्र पर
वह पाता है
कष्ट।

पुण्योदय

अहो प्रज्ञ!
स्व पुण्योदय ही
देगा साथ
हर क्षण हर पल,
अन्य कोई नहीं
लोक में तेरा साथी
देखा है तूने
प्रारंभ से आज-तक,
प्रत्येक पुरुष
देखता है
स्व का ही लाभ
मात्र कहता है
महाराज महाराज
इससे भी है
एक व्यक्ति का
स्व का राज।

स्वभाव दृष्टि

अहो हंसात्मन्!
स्वभावों को
निहार
इनका गमन
कहाँ-कहाँ हो रहा?
मार्ग की
उन्मार्ग में?
सत्यार्थ मोक्षमार्ग में
हुआ तो
शिवत्व को
प्राप्त करेगा,
उन्मार्ग में
हुआ गमन
तो संसार में
भव-भव में
भ्रमण करेगा,
देख ले स्वयं
कर ले निर्णय
तु सम्यक्।

बन्ध्या

अहो हंसात्मन्!
तत्त्व ज्ञानी कहते हैं
मन्दबुद्धि भी
ठोकर खाकर
सुधर जाते हैं,
पर जो ठोकर
पर भी ठोकर
खाकर न सुधरें
वे मंदबुद्धि नहीं
जड़बुद्धि हैं,
तत्त्व निर्णय की
अपने जीवन में

सुध-बुध
नहीं जिन्हें
वे विचारे
बुद्धि से
बन्धया।

नियत्ता

अहो प्रज्ञ!
चिद्‌ब्रह्म को देख
चैतन्य ध्रुवधाम ही
तेरा है निज स्थान,
स्व थानक को
छोड़कर अज्ञ बना,
कहाँ तु
कर रहा भ्रमण?
न पर वस्तु
तेरी है
न पर पुरुष,
संयोग
जो जो भी हैं
वे सब ही
वियोग के लिए,
इस नियत्ता को जान
स्व को मात्र
पहिचान।

संसार का कारण

अहो हंसात्मन्!
पर वस्तु को
छोड़ना क्या त्याग है,
बाह्य द्रव्य का
त्याग तो बहिरात्मा भी
कर लेता है
अभव्य जीव
द्रव्य लिङ्ग
धारण कर
ग्रैवेयक तक
चला जाता है,
त्याग करो
अंतरंग के
कषाय भाव का,
जो
अनंत संसार
के कारण हैं।

ध्रुव ज्ञायक

अहो हंसात्मन्!
ध्रुव ज्ञायक का
एक मात्र ले
तु आलम्बन,
नहीं अन्य कोई
परमार्थ से तेरा
आलम्बन,
लेगा जब-तक तु
पर का आलम्बन,
तब-तक होता रहेगा
भव-भव में भ्रमण

भव भ्रमण से
तु कर आत्मरक्षण
हो जा
पर-भावों से
पूर्ण
सुरक्षित।

ज्ञानी

अहो हंसात्मन्!
लाभ–अलाभ
सुख–दु:ख
जीवन–मरण
यह तो संसार का
स्वभाव है
इसमें दु:खी होना
ज्ञानी का धर्म नहीं,
जगत् तो
ऐसा ही है
उसे परिवर्तित नहीं
किया जा सकता,
जगत् में रहकर
एक मात्र
स्व स्वभाव को
बदला जाता है।

प्रमाण

अहो हंसात्मन्!
लोक में नाना
जीवों की बुद्धियाँ
स्वतंत्र हैं,
वस्तु धर्म का निर्णय
जगत् की बुद्धियों
से नहीं होता,
वस्तु धर्म का निर्णय
सर्वज्ञ देशना से
ही होता है,
निज सम्यक्त्व की
करता है

यदि रक्षा, तो
आगम वाक्यों
को ही प्रमाण मानों,
सर्वज्ञ वचन ही
प्रमाण हैं
सबके वचन
प्रमाण नहीं हैं।

प्रमाण का फल

अहो हंसात्मन्!
ज्ञान ज्ञान है
ज्ञान स्वयं में
प्रमाण है प्रमेय है
सम्यग्ज्ञान को
प्रमाण जान
अज्ञान निवृत्ति
हान उपादान
उपेक्षा प्रमाण
का फल पहिचान,
ज्ञान से अर्थ ज्ञान
तो होता है,
पर ज्ञान
अर्थजन्य
नहीं होता,
यही परम
सत्य है
त्रैकालिक
सिद्धांत।

मध्यस्थ भाव

अहो हंसात्मन्!
अंतः करण मत कर
तु दुःखी
निंदा प्रशंसा
दोनों ही है
कर्म प्रकृति,
दोनों में से
किसी एक का
संसार में रहेगा उदय,
यशोदय पर
सब होते हैं
प्रसन्न,
अयशोदय
पर रहते हैं
सब शान्त,
ज्ञानी जन
तो दोनों में
रखते निज के
मध्यस्थ
परिणाम।

ज्ञाता ही ज्ञानी

अहो प्रज्ञात्मन्!
वस्तु व व्यक्ति
दोनों ही तेरे से
पूर्ण भिन्न हैं,
अविद्याभ्यास के वश
पर में मेरापन
आता है,
परंतु कोई भी
मेरे होते नहीं हैं
इस सत्यार्थता
को जो जान गया
वही आत्मज्ञानी
शेष सब हैं
अज्ञानी।

ब्रह्मधर्म

अहो हंसात्मन्!
ब्रह्मचर्य का रक्षक है
सर्वधर्म रक्षक,
जिसके अंदर
ब्रह्मचर्य नहीं
उसके पास कोई
भी धर्म नहीं,
वन हो उपवन
महल हो, मशान
ब्रह्मचारी का सर्वत्र
होता है सम्मान,

ब्रह्मचर्य धर्म
की ही
महिमा से
बने हैं
चौबीसों भगवान्
प्राणों से प्रिय है
हमारा ब्रह्म धर्म महान्।

सिद्धि का साधन

अहो हंसात्मन्!
साधना का मार्ग
आत्माराधना का
मार्ग है,
साधना में
यदि है
आत्माराधना, तो
सफल है वह
साधना,
साधना
में नहीं है
किंचित् मात्र भी
आत्माराधना तो
खोखली है वह
साधना,
साधक
अल्पश्रुतवान
भी है तो
उसका भी कल्याण है
यदि वैराग्यवान है तो।

विशुद्ध दर्शन

अहो हंसात्मन्!

अल्प श्रुतवान भी है

यदि वैराग्यवान

तो वह भी पाता है

शीघ्र पद निर्वाण

ग्यारह अंङ्ग-धारक

बहु श्रुतवान भी

यदि नहीं है

वैराग्य वान

तो नहीं

पा सकता

वह पद

निर्वाण,

साधुपद

भाता है वही

जहाँ होता है

विशुद्ध दर्शन

ज्ञान चारित्र

का दर्शन।

अनाकांक्षा

अहो हंसात्मन्!
आत्मशान्ति का मार्ग
आनाकांक्षा भाव
जहाँ-जहाँ है आकांक्षा
वहाँ-वहाँ है
अशान्ति,
पर वस्तु के
संग्रह की
वृत्ति है जिसकी
शान्ति छिन
जाती है उसकी,
आत्म द्रव्य पर
है दृष्टि जिसकी,
आत्मा
आनंदित रहती
है सदा उसकी।

निर्णय

अहो हंसात्मन्!
निर्णय लेना
प्रज्ञा का विशेष
कार्य है,
निर्णय वही
सम्यक् होता है,
जिस निर्णय
के उपरान्त
स्वयं में
क्लेश न हो,
जो निर्णय
शोक व संताप का
कारण बने,
वह नहीं
प्रज्ञावानों का
निर्णय,
महान्
निर्णय तो
वही होता
है जोस्वपर के
कल्याणका
कारण बने।

जीवनोपदेश

अहो हंसात्मन्!
उपदेश की
कुशलता के अनुकूल
आचरण की
कुशलता आ जाए
तो उपदेश
स्वर्ण सुगन्ध
सदृश हो जाए,
आचरण शून्य
उपदेश निर्गंध
पुष्पवत जान
जीवन उपदेश
हो जाता है
जिसका
वही बनता है
भगवान्।

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर,
श्री महावीरजी पाटनी, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर,
श्री माँगीलालजी किशोरजी पहाड़िया, हैदराबाद

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर,
श्री राजेशजी जैन, (लॉरेल), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर,
श्री संतोषकुमारजी जैन, (पटनावाले), सागर
श्री टी.के. वेद जी, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारायण जी, नागपुर
श्री हेमचंद मीना जैन (सिरमोर), इंदौर

संरक्षक

श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. जैनेन्द्रजी जैन, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक परिवार, इंदौर,
श्री पी.सी. जैन सा. (बैंकवाले), इंदौर
श्री प्रमोदकुमार जी जैन, (बारदाना) सागर
श्री भागचंदजी कंछेदीलालजी जैन, सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू मोना जैन, सिहोरा
श्री कमलकुमारजी कमलांकुर, भोपाल

श्रीमती कुसुमजी प्रकाशजी, सुखलिया, इदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्री अरुण मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री पवन-अल्काजी, अपूर्व भावीनजी कोठारी, भीलवाड़ा
श्री शशिकान्त धीरजकुमारजी अजमेरा, भीलवाड़ा
श्री प्रदीपजी मनोजजी वेद, भीलवाड़ा
श्री सुगनचंदजी विजयजी झांझरी, भीलवाड़ा
श्री राकेशजी सिंघई (पत्रकार), भोपाल
श्री मनोजजी प्रधान, भोपाल
श्री अजयजी (ज्योतिषी), भोपाल
श्री राजेन्द्रजी आम्रपाली, भोपाल
श्री संदीपजी (हर्ष सेनीटेशन), भोपाल
श्री हरीशकुमार प्रियंकजी अजमेरा, भोपाल
श्री संजीवजी संदीपजी (गेहूँ वाले), भोपाल
श्री जितेन्द्रजी जैन, भोपाल
डॉ. सुभाषजी जैन (जखारिया), भोपाल
श्री प्रमोद नील चौधरी, लालघाटी, भोपाल
श्री शैलेन्द्रजी जैन (शिल्पा), अजीराजपुर
श्री स्वप्निलजी मेघाजी (बड़जात्या मार्बल), इंदौर
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री केतनकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी जैन, झाँसी
श्री राजकुमारजी स्नेहलताजी चंदौरिया, भिलाई
श्री पी.के. जैन कावाखेड़ा, भीलवाड़ा
श्री राजकुमार बाकलीवाल, भीलवाड़ा
श्री संजय राजू जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री किशोर अमित जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री वेदप्रकाश भाईजी, मनोरमागंज, सागर
श्री धनकुमार संजय गंगवाल, वैशाली नगर, भिलाई
श्री मनोज, अनिल, जयकुमार जैन, राजिम (छत्तीसगढ़)

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री रिषभ जैन शाहगढ़ (भोपाल)
श्री वीरेन्द्र कुमार जी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीड़ी वाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्रीमती पुष्पाजी निर्मलजीकाला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री अनिलजी कासलीवाल, भिलाई
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री रज्जीलाल मोदी (सुपारी वाले), सागर
श्री प्रवीणकुमारजी जैन (वर्द्धमान), दिल्ली
श्री पन्नालाल जी जैन, कलकत्ता
श्री अरुणजी जैन, दिल्ली
श्री शैलेन्द्र कुमारजी जैन, बुंदी
श्री दिनेश-सीमा जैन, कोटा
श्री विशाल-नीतू जैन, मुलतान वाले, जयपुर
मुनि विश्वनाथसागर चातुर्मास समिति, भीलवाड़ा
दिगम्बर जैन समाज, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इन्दौर
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो.श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमार जी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)

श्री संतोष गरुजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्रीमती गुणमालाजी ए.के. बड़जात्या, इन्दौर
श्री प्रदीप कुमारजी नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर
स्व. श्री महेन्द्र कुमारजी बड़जात्या, इन्दौर
श्री सनत कुमारजी, अरविन्दजी (सतभैया), इन्दौर
श्रीमती इंदिराजी सेठी, इन्दौर
श्री विकासजी राजीवजी जैन, इन्दौर
श्रीमती सीमा एस.सी. जैन, इन्दौर
श्री डॉ. राजेशजी जैन, इन्दौर
श्री अरविन्द जैन, इन्दौर
श्री राकेश कुमार, इन्दौर
श्री संतोष जैन गुरुजी, इन्दौर
श्री जे.के. चौधरी, सुदामा नगर, इन्दौर
श्री संजीव जैन, मेगनम टॉवर, इन्दौर
श्री मनोजजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री प्रसन्नकुमारजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री अरविन्दजी जैन, सुदामानगर, इन्दौर

उज्जैन
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री राकेश कुमारजी किशनचंदजी जैन, उज्जैन
श्री विद्युतजी करणमलजी डोसी, उज्जैन
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया), उज्जैन

श्री कैलाशचंद रवीन्द्रकुमारजी जैन, उज्जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी, उज्जैन
श्री महावीरप्रसादजी जैन, उज्जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन, उज्जैन
श्रीमती वीणाजी जैन, उज्जैन
श्री विमल कुमारजी राजमलजी जैन, उज्जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन
श्रीमती सुधादेवी इंदरचंदजी जैन

ललितपुर
श्री रामप्रकाशजी जैन
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमार जी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसाद जी जैन
श्री नरेन्द्र कुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरूपचंदजी सिंघई

श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड लाईन्स)
श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमार जी जैन

छतरपुर
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईटइंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंद बजाज
श्री श्रीपालजी बड़कुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

भीलवाड़ा
श्री सुरेन्द्र कुमारजी वीरोमलजी
श्री पवन अल्काजी, अपूर्व भावीन कोठारी
श्री शशिकान्तजी धीरज कुमारजी (अजमेरा)
श्री प्रदीपजी (वेद परिवार)
श्री सुगनचंदजी विजयकुमारजी झांझरी
श्री सोहनलालजी गंगवाल (पाटीदार)
श्री पी.के. जी जैन (कावाखेड़)

अन्य शहर
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन (नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली

श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी टेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्रीमती विमलाजी सिंघई, लालघाटी, भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली
श्रीमती सुनीता भरतकुमार जैन, चौक, भोपाल
श्रीमती अर्मलशीलकुमार, हरियाणा
श्री मनोज कुमार, हरियाणा
श्री मनोज जैन, भोपाल
श्री गोतम जैन, इन्दौर
श्री निर्मलकुमार जैन, नोयडा
श्रीमती देवी राजकुमार जैन, दुर्ग
श्री संजय जैन, दिल्ली
श्री बाबूलालजी ईश्वरलालजी पाटोदी, छिन्दवाड़ा
श्री भूपेन्द्रकुमारजी इन्द्रमलजी जैन, गाजियाबाद
श्री सुशील कुमार जी शोमितजी जैन, ग्यासपुर
श्रीमती स्नेहलताजी एस.के. जैन, सोनीपत
श्रीमती ममताजी जैन, पानीपत
श्रीमती मालादेवीजी जैन, करोली
श्री जेठालालजी कुबेरदासजी शाह, मुंबई
श्री प्रदीप प्रभाकरजी जैन, मुंबई
श्री विशालजी नीतूजी जैन, जयपुर
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी (लुहाडिया) भिलाई
श्री अरुणजी मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री रतनलाल जी जैन, अलवर (राज.)
श्री आकाश जैन, शांतिविहार, दिल्ली
श्री सुनीलकुमार दिलीपकुमार जैन, भोपाल
श्री वीरेन्द्र शशि जैन, हिसार
श्री व्ही.एस. जैन द्वारा आर.के. जैन, मुजफ्फर नगर
श्री बाबूलालजी पाटोदी परिवार, छिन्दवाड़ा
श्री संजय कुमार सिंघई, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री अनिमेष जैन, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री वैभव चौधरी पुत्र श्री सुभाष चौधरी, नवापारा राजिम
श्रीमती कुसुम जैन धर्मपत्नी श्री निर्मल कुमार चौधरी, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)